ओ३म्

सामयिक उन्मेष

★ प्रकाशक ★

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा

वैदिक प्रकाशन

51 हनुमान रोड, नई दिल्ली-1

समर्पण

आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में रात दिन यथाशक्ति प्रयास रत दिल्ली के आर्य बन्धुओं को सादर समर्पित।

सम्पादकीय

सामयिक उन्मेष में वर्ष 1988-89 में आर्यसन्देश में प्रकाशित अग्रलेखों को संकलित किया गया है। किसी भी समाचार पत्र के अग्रलेख सामयिक परिस्थितियों को ही रेखांकित करते हैं। महत्त्वपूर्ण परिस्थितियाँ अलग-2 व्यक्तियों के लिये अलग हो सकती है। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के लिये अलग होती हैं, खेलकूद में रुचि रखने वालों के लिए अलग। अध्यात्म गुरुओं के लिये अलग। सामाजिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों के लिए अलग प्रकार की परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हो सकती हैं। यह सब होते हुए भी कुछ विषय ऐसे है, जो सभी के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। वह विषय है मनुष्य का निर्माण। यह विषय शाश्वत है। सदा से मनुष्य के निर्माण की बात महत्त्वपूर्ण रही है। मनुष्य को संस्कारवान् बनाना सदा से ही आवश्यक, समझा गया है। आखिर क्यों ? कोई भी व्यक्ति, जो अच्छा नहीं है परन्तु जो चमक दमक लिये है, उसी की ओर आर्कषित होता है ? इसी पुस्तक में एक लेख संकलित है जिसमें लिखा है कि बुराई अपने आप में बुरे लोगों को एकत्रित करने का गुण रखती है। इसके विपरीत भले मनुष्यों को एकत्रित करना पड़ता है। यह एकत्रीकरण ही हमारा उद्देश्य है। मनुष्य का मन नैसर्गिक रूप से अभद्र की ओर उन्मुख रहता है। मनुष्य का मन सरलता की ओर दौड़ता है। गहराई से देखें तो वह सरल नहीं है, जो सरल लगता है। भौतिक ऐश्वर्य का जीवन सरल लग सकता है, वह मोहक लग सकता है, राष्ट्र नेता का पद मोहक लग सकता है, सरल लग सकता है। परन्तु इन्हें सरल मार्ग से प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐश्वर्य और भोग-विलास के जीवन को सरल मार्ग से प्राप्त करना संभव नहीं है। जब इसकी प्राप्ति का मार्ग ही सरल एवं श्रेय नहीं है, तो अभीष्ट किस प्रकार सरल एवं श्रेय हो सकता है। यह प्रेय तो हो सकता है, परन्तु श्रेय नहीं हो सकता। अच्छा पाने के लिए साधन भी अच्छे ही होने चाहिए। वहीं तो सरल ऋजु है। वृत्त और ऋजु में यही अन्तर है। वृत्ताकार रेखायें मोहक होती है। गोल मटोल भरे-भरे अच्छे लगते हैं। सभी फल जो गोल-मटोल भरे-भरे हों मीठे लगेंगे। जो ऋजु हैं, वे काँटे हैं। जो सपाट हैं वे पैंने और तीखें हैं। पर क्या सुन्दर वस्तु की रक्षा बिना पैनेपन के की जा सकती है यह कहावतही है कि इतना भी मीठा मत बनो कि तुम्हें निगल जाये। गुलाब को तोड़ना और आसान हो जाता, यदि उसके काँटे न होते। काँटे हैं, इसलिए तोड़ने वाले को साव-धान रहना पड़ता है।

अब प्रश्न है कि मनुष्य मनुष्य कैसे बने। इसका मार्ग सरल तो नहीं है। दुष्ट बनना सरल हो सकता है, पर सरल चित्त मनुष्य बनना व सहज नहीं है। हमारा भारतीय दर्शन हमारा वैदिक दर्शन इसी प्रकार के विचारों से भरा पड़ा है कि

मानवता क्या है, उसे कैसे प्राप्त किया जाय, उसके नियामिक तत्व क्या हे। पर क्या हमारे अन्दर वांछित मनुष्यता है। कुछ लोग दूसरों की बुराई करने में ही मनुष्यता की इति श्री मानते हैं। वे कहते हैं कि हमने तो कह दिया। जिसके बारे में कह दिया, वह सफाई देता फिरे। सफाई किस किस को दें। मारते का हाथ पकड़ ले, बोलते की जबान कैसे पकड़ेंगे। कुछ कहते हैं कि इसका इलाज है अपनी बड़ाई करें। कोई और न करे तो स्वयं करो। वे अपने मुँह मियामिट्ठू बनते हैं। अस्तु, उद्देश्य तो हमारा भी मुख्य-निर्माण ही है। उसमें मनुष्ता की जो सुप्त भावनाएं हैं, उनका जगाना ही हमारा अभीष्ट है। जन जागरण, धर्मोपदेश, सत्या सत्य विवेचन ही इस पत्र का उद्देश्य रहा है।

इस पुस्तक में हमने विशेष रूप से महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में की गई, सेवाओं का आकलन किया है। राष्ट्र निर्माण, मानव-निर्माण— इन दो दिशाओं में किये गये कार्यों का विवरण इसी लिए किया गया है कि आने वाली पीढ़ियां, इनसे प्रेरणा पा सकें। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना, यही उद्देश्य लेकर की थी कि इसके माध्यम से संसार का उपकार किया जा सके। उनके शारीरिक अस्तित्व एवं सामाजिक विकास को समुचित दिशा दी जा सके तथा मनुष्य अपने तक सीमित न रहे, वे अपने ही स्वार्थों में विप्त न रहे, बल्कि वे दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति मानें।

कुछ ऐसे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के विषय भी इस पुस्तक में संकलित लेखों में लिए गए हैं, जिनका भारतीयता, भारतीय अस्मिता एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में विशेष महत्व हो सकता है। भारतीय मूल के लोगों के साथ फिजी, नेपाल, तथा अन्य देशों में क्या हो रहा है, कुवैत में उनके धार्मिक अधिकारों को किस प्रकार कुचला जा रहा है इन विषयों पर भी विचार किया गया है। भारतीय समाज के विभिन्न अंगों को समानता का अधिकार प्राप्त हो। इस विषय को भी रेखांकित किया गया है।

यह सुनिश्चित है कि राष्ट्र का और जाति का उत्थान तभी संभव है जब मनुष्य संस्कार वान हों। वे धार्मिक हों तथा अपने कर्त्तव्यों का सम्यक् पालन करने वाले हों।

इस अग्रलेखों को सामयिक एवं प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत करने में मैंने तो कार्य किया ही है, श्री सूर्यदेव जी तथा श्री मूलचन्द गुप्त जी ने भी पूर्ण सहयोग दिया है। सभी सहयोगियों का साधुवाद।

—डा० धर्मपाल

रचना-क्रम

क्रम | पृष्ठ

महान् स्वामी दयानन्द सरस्वती

यहां महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर प्रकट की गई सम्मतियों का संकलन किया गया है, जिससे उनकी महत्ता का दिग्दर्शन होता है।

1. महर्षि दयानन्द ने धर्म जागृति बढ़ायी, आर्य संस्कृति का, वेदाभ्यास का, संस्कृत भाषा का, हिन्दी का प्रेम बढ़ाया, अस्पृश्यता रूपी कलंक को धोने का प्रयास किया। ऐसे सब कार्यों के लिए महर्षि का स्मरण चिरस्थायी रहेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।

—महात्मा गांधी

2. मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारत वर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।

...मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदर-पूर्वक श्रद्धांजलि देता हूं, जिसने देश की पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।

—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर

3. वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा और मनुष्य व संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का वीर विजेता था और इस प्रकार मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है। इन दो शब्दों का, जो कि हमारी भावनाओं के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है, मिश्रण ही दयानन्द की उपयुक्त परिभाषा प्रतीत होती है। उसके व्यक्तित्व की व्याख्या की जा सकती है—एक मनुष्य, जिसकी आत्मा में परमात्मा है, चर्म चक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन-तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ़ सके तथा कल्पना को क्रिया में परिणत कर सके। वह स्वयं दृढ़ चट्टान थे। उनमें दृढ़ शक्ति थी कि चट्टान पर घन चलाकर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सके। प्राचीन सभ्यता में विज्ञान के गुप्त भेद विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ को अर्वाचीन विद्याओं ने ढूंढ लिया है, उनका परिवर्तन किया है और उन्हें अधिक समृद्ध व स्पष्ट कर दिया है, किन्तु दूसरे अभी तक निगूढ़ ही बने हुए हैं। इसलिए दयानन्द की इस धारणा में कोई अवास्तविकता नहीं है कि वेदों में विज्ञान सम्मत तथा धार्मिक सत्य निहित है।

वेदों का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे अन्तिम पूर्ण अभिप्राय कुछ भी हो, किन्तु इस बात का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उसने

सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिए निर्दोष मार्ग का आविष्कार किया था। चिर-कालीन अव्यवस्था और अज्ञान-परम्परा के अन्धकार में से सूक्ष्म और मर्मभेदी दृष्टि से उसी ने सत्य को खोज निकाला था। जंगली लोगों की रचना कही जाने वाली पुस्तक के भीतर उसके धर्म पुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुञ्जी प्राप्त की है, जो युगों से बन्द थे और उसने पटे हुए झरनों का मुख खोल दिया।

—ऋषि दयानन्द के नियम-बद्ध कार्य ही उनके आत्मिक शरीर के पुत्र हैं, जो सुन्दर, सुदृढ और सजीव है तथा अपने कर्ता की प्रत्याकृति है। वह एक ऐसे पुरुष थे जिन्होंने स्पष्ट और पूर्ण-रीति से जान लिया था कि उन्हें किस कार्य के लिए भेजा गया है।

—श्री अरविन्द घोष

4. स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो उसके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता हैं। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया, उसमें कहीं अधिक आर्यसमाज ने पंजाब और संयुक्त प्रान्त में किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्यसमाजी है। स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। संगठन कार्यों के सामर्थ्य और प्रसार की दृष्टि से आर्यसमाज अनुपम संस्था है।

—श्री सुभाषचन्द्र बोस

5. दयानन्द स्वतन्त्रता के मेरे पितामह थे।

—लोकमान्य तिलक

6. मैंने राष्ट्र, जाति और समाज के लिए जो भी किया, उसका श्रेय उस महर्षि को प्राप्त है जो सर्वहितैषी, वेदज्ञ और युगदृष्टा था, उनका शिष्य होने का मुझे गर्व है।

— श्याम जी कृष्ण वर्मा

7. ऋषि दयानन्द ने हिन्दू समाज के पुनरुत्थान में इतना अधिक हाथ बंटाया है कि उन्हें 19 वीं शताब्दी का प्रमुखतम हिन्दू समझा जाएगा।

—श्री तारकनाथ दास एम. ए. पी. एच. डी. (म्यूनिख)

8. "स्वामी दयानन्द जी के राष्ट प्रेम, उन के क्रान्तिकारी हृदय, उनकी हिम्मत, उनके ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन का मैं सदा उपासक रहा हूँ। समाज की सब कुरीतियों और बुराइयों के विरुद्ध उन्होंने क्रान्तिघोष किया था। यदि स्वामी जी न होते तो हिन्दू समाज की क्या हालत होती, इसकी कल्पना करना कठिन है।"

—सरदार वल्लभ भाई पटेल

9. स्वामी दयानन्द सरस्वती तेजस्वी और आध्यात्मिक तो थे ही, साथ ही वे एक युग-प्रवर्त्तक और समाज सुधारक भी थे।

—प्रियदर्शनी इन्दिरा गांधी

महान् स्वामी दयानन्द

10. "स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। आर्यसमाज मेरी माता है। इन दोनों की गोद में मैं खेला हूँ। मेरे हृदय मस्तक दोनों को उन्होंने घड़ा है। इन दोनों ने मुझे स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करना सिखाया है। आर्यसमाज ने मुझे प्राचीन आर्य सभ्यता का मान करना सिखाया। आर्यसमाज ने मुझे कुर्बानी का मार्ग दिखाया। आर्यसमाज ने मेरे अन्दर सत्य, धर्म और स्वतन्त्रता की रूह फूंकी।"

—पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

11. "मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जो सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही हैं। पर···यह आग एक भट्टी में थी, जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह आग भारत वर्ष के परम योगी दयानन्द के हृदय में प्रज्वलित हुई थी।"

—ऐन्ड्रयूज जैक्सन, अमेरिका के महान् विद्वान

12. "जब स्वराज्य का मन्दिर बनेगा तो उसमें बड़े-बड़े नेताओं की मूर्तियां होंगी और सबसे ऊंची मूर्ति दयानन्द की होगी।"

—श्रीमती एनोबीसैंट

पं० केसरी ला० लाजपतराय

13. महर्षि दयानन्द भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार में सदैव चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाए थोड़ा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, परन्तु स्वामी उन सबसे बढ़ कर थे।

—खदीजा बेगम एम० ए०

14. स्वामी दयानन्द निःसंदेह एक ऋषि थे। उन्होंने अपने विरोधियों द्वारा फैंके गए ईंट-पत्थरों को शान्तिपूर्वक सहन कर लिया। उन्होंने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला लिया। वह मर कर भी अमर हैं। ऋषि का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त करने और जाति-बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। ऋषि का आदेश है—आर्यावर्त, उठ जाग, समय आ गया है, नये युग में प्रवेश कर, आगे बढ़।

(पाल रिचर्ड प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक)—रेवरेण्ड सी० एफ० एण्डरूज

15. ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति, अविचलता तथा सिंह पराक्रम फूंक दिए हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुष-सिंह उनमें से एक था जिन्हें यूरोप प्रायः उस समय भुला देता है जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है, किन्तु एक दिन यूरोप को अपनी भूल मानकर उसे याद करने के लिए बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था।

दयानन्द ने अस्पृश्यता व अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा के सुधार में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र-संगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से था।

—फ्रेंच लेखक, रोम्याँ रोलां

16. स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया, और जहां तक समाज-सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि वे पूर्ण अभिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।

—प्रो० एफ० मैक्समूलर

17. आर्यसमाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धान्त दिया। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है......।"

—ब्रिटेन के (स्व०) प्रधान मन्त्री रेमजे मैकडॉनल्ड

18. स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी उन्हें देवता तुल्य जानते थे, और वह निस्सन्देह इसी योग्य थे। वह इतने विद्वान और अच्छे आदमी थे कि वे प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान-पात्र थे। उनके समान व्यक्ति समूचे भारत में इस समय कोई नहीं मिल सकता। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उनकी मृत्यु पर शोक करना स्वाभाविक है।

—सर सैयद अहमद खां

(आर्य संदेश, 13-11-88)

आर्यसंदेश के लिए सहयोग

हमें अपार प्रसन्नता है कि "आर्य सन्देश" जिसका उदय ऋषि निर्वाण दिवस" दिनांक 13 नवम्बर 1977 को हुआ था, अपने गौरवशाली ग्यारह वर्ष पूर्ण कर बारहवें वर्ष में प्रवेश कर चुका है।

आज का युग प्रचार का युग है। हाँ! प्रचार ठीक प्रकार का होना चाहिए, न कि झूठी बातों का, या यूं ही बढ़ा चढ़ाकर। आर्यसमाज ने सदैव शुद्ध प्रचार के महत्व को सर्वोपरि रखा है। यह पत्र भी भारत की राजधानी दिल्ली में वैदिक सिद्धान्तों के प्रकटीकरण, महर्षि दयानन्द सरस्वती के मन्तव्यों के स्पष्टीकरण तथा आर्यसमाज के क्रियाकलापों का दिग्दर्शन कराता हुआ दिल्ली राज्य की आर्यसमाजों के संगठित दृष्टिकोण के लिए यथाशक्ति भरपूर प्रयास करेगा। दिल्ली विश्व की विख्यात नगरी होने के कारण जहां विश्व के समस्त देशों के राजनयिक निवास करते हैं—में हम आर्यत्व के सन्देश को फैलाने में सफल होंगे तथा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के मूलमन्त्र की ओर एक और कदम बढ़ा सकेंगे इस सबके लिए आवश्यक है कि दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों के अधिकारी आर्यजन तथा इस पत्र को एक ऊंचे स्तर का पत्र बनाने में हमें पूरा सहयोग दें।

आर्य विद्वान् उच्चकोटि के लेख भेजे और कविगण कवितायें, समाजों के अधिकारी अपनी समाजों के प्रभावशाली कार्यक्रमों का विश्वरण भेजें और नेतागण स्नेहपूर्ण पथप्रदर्शन करें। साथ ही दिल्ली की समस्त आर्यसमाजें, आर्य शिक्षण संस्थायें तथा आर्य परिवार इस पत्र के ग्राहक बनें और व्यापारी गण पत्रके लिए अपने संस्थानों के विज्ञापन दें। इस प्रकार के सहयोग से जहाँ आपका यह पत्र आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त होगा वहाँ यह पत्र उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जायेगा।

(आर्यसन्देश, 20-11-88

देवनागरी और आर्य भाषा

दयानन्द के नेत्र तो वे दिन देखना चाहते हैं कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही प्रयोग और प्रचार हो। मैंने आर्यावर्त्त भर में भाषा के ऐक्य सम्पादन करने के लिये ही अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखें और प्रकाशित किये हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

ब्रह्मचर्य का अभाव

संसार में रह कर, जीवन के कठिन संग्राम में हमें शारीरिक, आत्मिक, मानसिक सब प्रकार का बल खर्च करना पड़ता है। यह बल ब्रह्मचर्य द्वारा ही हम संचय कर सकते हैं—ब्रह्मचर्य को छोड़कर इस अनुष्ठान का अन्य सुयोग नहीं हैं। ब्रह्मचर्य के द्वारा यदि हम वह बल इकट्ठा न कर सकें तो खर्च कहाँ से करेंगे ? जिसकी पूंजी नहीं है, गांठ खाली है, वह क्या खर्च करेगा आज तो हमें जीवन-निर्वाह के समान जुटाये नहीं जुटते, बात-बात में मुहताजी रहती है और पल भर को भी शान्ति नहीं मिलती, उसका कारण केवल यही है कि ब्रह्मचर्य की आवश्यक प्रथा का, हमने लोप कर डाला है। हमारा शरीर रोगी क्यों ? ब्रह्मचर्य के अभाव से। सन्तान क्यों नहीं होती ? ब्रह्मचारी न रहने और कच्चा वीर्य फेंकने से। सन्तान क्यों होकर मर जाती या दुर्बल रहती है ? ब्रह्मचर्य नष्ट करके वीर्य कमजोर कर दिया। गरीब क्यों हो ? कुछ सीखा नहीं, जल्दी गृहस्थ हो गए। दुखी क्यों हो ? इसलिए कि तन पर, मन पर, आत्मा पर जो बोझ है वह अधिक है। तन, मन, आत्मा इनका बल ब्रह्मचर्य से मिलता, उसे पालन नहीं किया। एक-दो मनुष्य नहीं, सारा संसार निर्बल है, इसका भी कारण ब्रह्मचर्य का अभाव है। ब्रह्मचारी बनकर विद्या पढ़ने से आत्मिक बल बढ़ता है—आत्मा बलिष्ठ होने से मनोवृति गन्दी नहीं होने पाती—विशुद्ध मनोवृत्ति होने से शारीरिक बल कुचेष्टाओं द्वारा खण्डित न होकर संरक्षित रहता है। व्यक्तियों का समुदाय ही समाज है, जब हमारी आत्मा और शरीर बली हैं तो समाज भी बली है। ब्रह्मचर्य के भक्त प्राचीन आचार्यगण अपने बल का अखण्ड प्रताप जगत् के सामने रख गए हैं—और ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हमारा भी बल जगत् के सामने हैं। जो है सो सब जानते है—कहना सुनना व्यर्थ है।

सच तो यों है कि हमारी आरोग्यता, आयु, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और हमारी सारी भावी कामनाओं का जो मूल है, एकमात्र इसी के अनुष्ठान करने से हमारी धार्मिक और नैतिक सारी मनोकामनायें पूरी होंगी। ब्रह्मचारी ही आदर्श सन्तान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र बना सकता है। उत्तम सन्तान की कामना करने वाले को उचित है कि वह ब्रह्मचारी बने और पूर्ण ब्रह्मचारी बने। ब्रह्मचर्य का नियम-पालन करने से हमें अधिकाधिक विद्या-प्राप्ति का बड़ा अवसर मिलता है। विद्या क्या है ? शास्त्र क्या है ? यही सब महानुभावों के सच्चे तजुर्बे हैं, उन्हें देखकर, समझ कर हम जानते हैं कि इस अगम्य संसार की गति कैसी है। किस काम को किस प्रकार करके क्या हानि-लाभ होगा। ईश्वर, माता, पिता, पुत्र, स्त्री व धर्म इन सबको जानने ही के लिए ब्रह्मचर्य की सृष्टि है। हमारे सामने जीवन का, सुख-दुःख का, लाभ-हानि का,

साहस, वीरता और परोपकार का जो बृहत भवन खड़ा हो सकता है ब्रह्मचर्य ही उसकी नींव है। यह जो हमारे सामने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चतुर्वर्ग प्राप्ति का महान वृक्ष है, ब्रह्मचर्य ही उसका मूल है। अगर हम चाहते हैं कि हमारा भवन दृढ बने, अगर हम चाहते हैं कि हमारा उद्देश्य-वृक्ष आँधी के बड़े-बड़े झोंकों से भी न उखड़े तो हमें चाहिए कि पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके कृत-कृत्य हो जायें।

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य बड़ा गहन है। संसार में आकर उसे न केवल अपना ही उद्धार करना होता है, वरन् समस्त प्राणियों का अधिपति बन कर जगत् पर शासन करना होता है। महान्-शक्ति प्राप्त किए बिना शासन नहीं हो सकता! और शक्ति सम्पादन का एक ही उपाय है—वह ब्रह्मचर्य है। मनुष्य की उन्नति का मार्ग बड़ा प्रशस्त है, वह मोक्ष तक खुला पड़ा है। इसलिए मनुष्य चाहे तो बहुत कुछ कर सकता है। अपनी गहन मेधा-बुद्धि से, प्रबल बाहुबल से, सारे संसार को अपनी झलक दिखा सकता है। प्राचीन काल में भीष्म, भीम, कृष्ण, राम लक्ष्मण आदि महानुभाव और शुक, व्यास, कपिल आदि मुनिगण इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं। इन सब में ब्रह्मचर्य का बल था, उसी से वे दुर्जय योद्धा और अन्तदृष्टि वाले हो गए थे। कोई ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट वैसी कामना करे तो कैसे वहाँ तक पहुंच सकता है?

जब द्वापर का युद्ध हुआ, तब जरासन्ध, कालयवन, कंस, शिशुपाल आदि अधर्मियों के अत्याचार के दौर दौरों का बाजार इतना गर्म हो गया था कि प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था। उनके उत्कृष्ट बल और प्रभाव को देखकर किसी की उनके आगे सिर उठाने की हिम्मत नहीं हुई, पर कृष्ण ने बारह ही वर्ष की अवस्था में उनके आगे सिर उठाया, उनके गर्व को तोड़ा और निरन्तर परिश्रम करके यत्न, युक्ति और बल से उनका मूलोच्छेद करके धर्म-राज्य की नींव स्थापित की। इतना करते हुए भी किसी ने उन्हें घबराते या उदास नहीं देखा, वे सदा आनन्दकन्द रहे। दुःख मानो जगत् में उनके लिए था ही नहीं। द्वारिका में जब शाल्व के साथ उनका घोर युद्ध हो रहा था, उस आपत्तिकाल में भी द्यूत-सभा में द्रोपदी के वस्त्रहरण के समय उसकी रक्षा करना कृष्ण नहीं भूले! कुरुक्षेत्र में युद्ध की अग्नि भड़कना चाहती है; खून के प्यासे योद्धा जान पर खेल कर समर भूमि में डटे हैं; भीषण दृश्य सम्मुख है जिसके ध्यान से रोंगटे खड़े हो जाते हैं; बाप, बेटे, भाई, दादा सब अपने ही आत्मीयों के रक्त से हाथ रंगने को पागल हो रहे हैं; सभी हतचेत हैं; सभी उन्मत्त हैं; हिंसा और स्वार्थ को अग्नि सभी के हृदय में प्रचण्ड वेग से धधक रही है। उन सबको देखकर अर्जुन धनुष पटक देता है, दुःख में भरकर कृष्ण से कहता है—महाराज मेरे हाथ से धनुष खिसका पड़ता है, चमड़ी जली जाती है, मन में उद्वेग आ रहे हैं, मैं खड़ा भी नहीं रह सकता। अपने स्वजनों को मार कर अपना श्रेय मैं नहीं चाहता। जिनके लिए हम राज्य, धन चाहते हैं, वे ही प्राणों का मोह छोड़कर मरने पर डटे हैं! ये गुरु हैं, ये चाचा हैं, ये भतीजे हैं, ये भाई हैं, ये सम्बन्धी हैं, ये सब हमें मारने को तुले हुए हैं, ये सब जानकर भी हे मधुसूदन! इनको मारकर हम त्रिलोकी का भी राज्य नहीं

चाहते। अर्जुन का ऐसा मोह देखकर, कृष्ण मन ही मन हँसे। उनका मन तब भी पूर्ण शान्त था; स्तब्ध था; और इसी कारण ऐसी गड़बड़ के समय में भी कृष्ण ने बड़े शान्त-भाव से गीता का महोपदेश अर्जुन को दिया। यह क्या साधारण बात है? बिना ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा के ऐसा धैर्य! ऐसी अन्तर्दृष्टि; ऐसी स्थिरता आ सकती है क्या? कभी नहीं।

और चलो, मर्यादा-पुरुषोत्तम के ऊपर भी एक दृष्टि दो। उनका धैर्य, शान्ति त्याग और दृढ़ता विचारते ही हृदय आनन्द से गद्‌गद हो जाता है। कैसा चित्र है — एक ओर प्रबल पराक्रमी दुर्जय रावण खड़ा है, लंका-सा कोट, समुद्र-सी खाई, बड़े-बड़े शूर-वीर जिसके रक्षक, जिनका काम ही हिंसा और कुटिलता है। कुम्भकर्ण जैसा भाई, इन्द्रजीत जैसा पुत्र सहायक है। दूसरी ओर क्या है? अकेले राम, नंगा सिर है, नंगे पैर हैं, केवल हृदय में अपूर्व साहस और आत्मिक बल है। बस विजय की यह उपयुक्त सामग्री है। ऐसा मारा कि रावण का नाम-लेवा और पानी-देवा भी न बचा। सच है, ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा है।

जिस समय क्षत्रिय मदोन्मत्त होकर धर्म की मर्यादा का उल्लघंन कर चले थे, उन्हें अपने प्रबल-प्रताप से नाथने वाले परशुराम, और हिरण्यकश्यपु को केवल नाखूनों से चीर फेंकने वाले नृसिंहदेव—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से अपना अटल आतङ्क संसार-पट पर मढ़ गए हैं। जिस भीष्म ने एक बार श्रीकृष्ण को भी प्रतिज्ञा भंग करा कर क्षुब्ध कर दिया था कौन नहीं जानता कि वे आदर्श ब्रह्मचारी थे? रावण का पुत्र मेघनाथ का जिसने हनन किया' उस केसरी का नाम कौन नहीं जानता? सुलोचना बड़ी पातिव्रत्य स्त्री थी, उसी के पतिव्रत्य-धर्म के बल से मेघनाथ अजेय हो गया था। उसके पास खबर पहुंची कि मेघनाद मारा गया, तो उसने एकदम विश्वास करने से इनकार कर दिया। उसने कहा—राम में क्या शक्ति है कि मेरे पति को पराजित करे? जो बारह वर्ष नींद मारकर अखण्ड ब्रह्मचारी रहेगा वही कहीं उन्हें पराजित कर सकेगा? नहीं तो मेरे पति का बाल बांका करने वाला किसी माता ने नहीं जन्मा है। उसकी प्रचण्ड मूर्ति और तीक्ष्ण वाणी सुनकर दास-दासी भय से थर-थर कांपने लगे। उनका क्रोध सीमा से बाहर हो गया। उसे अपने पति की मृत्यु पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। तब एक दासी ने हाथ बाँध कर कहा—देवी सत्य ही लक्ष्मण ने आज उनका वध कर डाला है। बस, लक्ष्मण के नाम में ही बिजली का प्रभाव था। यह सुनते ही सुलोचना का लाल मुख पीला पड़ गया, आँखों का प्रकाश बुझ कर अंधेरा छा गया, उद्दण्ड मुख नीचे झुक गया—"हां, तब तो मैं निश्चय ही विधवा हुई"—यही उसके मुख से निकला, और मूर्छिता हो, धरती पर गिर गई। उसे लक्ष्मण के ब्रह्मचर्य पर उतना ही विश्वास था जितना अपने पतिव्रत-धर्म पर!" और क्यों न हो? लक्ष्मण यती थे भी इसी प्रशंसा के योग्य? जिस समय राम सीता की तलाश में ऋष्यमूक पर्वत पर आते हैं, उस समय सुग्रीव कुछ आभूषण पहचानने को उन्हें देता है। उन्हें राम, लक्ष्मण को दिखाकर पहचानने को कहते हैं। पर लक्ष्मण क्या उत्तर देते हैं! सुनो :—

केयूर नैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम्।

नूपूराण्यैव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

"इन बाजूबन्दों को नहीं जानता क्योंकि कभी उनको नहीं देखा और न इन कुण्डलों को ही पहचानता हूं। हां उन बिछुओं को जानता हूँ, क्योंकि चरण वन्दना करती बार नित्य देखा करता था।" यह लक्ष्मण यती के वाक्य हैं जो भाभी के लिए उन्होंने कहे थे। वे वीर मेघनाद क्या, समस्त विश्व को विजय कर सकते थे। सच है ब्रह्मचर्य को क्या दुर्लभ है!

बाल्यावस्था से जिनको बड़े-बड़े सिद्ध मुनियो में उच्चासन मिलता था, ऐसे प्रबल दिव्य-ब्रह्मचारी व्यास पुत्र शुकदेव का नाम सभी हिन्दू जानते होंगे। जिस समय वो पिता के आश्रम से निकल कर, विरक्त होकर वन को चले, मार्ग ही में गंगा पार करनी पड़ी। तब कितनी ही नग्न नहाती स्त्रियों ने उन्हें देखा और नहाती रहीं। पर जब व्यास वहाँ उन्हें ढूंढते-ढूंढते पहुंचे तो स्त्रियों ने एकदम पर्दा कर लिया। व्यास बड़े चकित हुए। पुत्रशोक तो भूल गए और कहा—"देवियों, यह क्या बात है कि पुत्र शुकदेव तुम्हारे बीच से निकल गया, पर तुमने पर्दा नहीं किया? और मैं वृद्ध हूँ, तुम सब मेरी पुत्री हो, फिर मुझसे क्या पर्दा?" स्त्रियों ने मुस्कराकर भक्तिपूर्वक व्यासदेव को प्रणाम किया और कहा—"देव! ऐसा कौन है जो परन्तप व्यास को न जानता हो! ऐसे तत्त्वदर्शी के दर्शनों से सच्ची शान्ति मिलती है। परन्तु हे शाँति धाम मुनि! शुकदेव युवा है तो क्या हुआ, वह जानता ही नहीं कि हम स्त्रियां हैं और आप सब कुछ होने पर भी हमें जानते हैं, इसी से हमने आपसे पर्दा किया है, आप क्षमा करें।" अहा! ऐसे ब्रह्मचारी युवा ऋषि की पूजा न करें तो किसको करेंगे? ऋषि क्या, वह ब्रह्मचारी त्रैलोक्य पूज्य है। हां! कब उनका पद-रज भारत के मस्तक पर फिर नसीब होगा?

दूर कहां जायें? जिस समय समस्त भारत में घोर खलबली मची थी, वैदिक धर्म का तेल रहित दीपक टिमटिमा रहा था, ढेर के ढ़ेर हिन्दू धड़ाधड़ मुसलमान-ईसाई हो रहे थे, हिन्दुओं के शिखा-सूत्र पर घोर आपत्ति आने को थी, अविद्या का अन्धकार प्रबल था—ठीक उसी समय एक प्रभावशाली व्यक्ति ने उस बहते हुए प्रवाह में एक ऐसी ठोकर लगाई कि सारा संसार चकित हो गया। वह वीर 'कार्य्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि' कह कर कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ा। गति का प्रवाह एकदम फिर गया। मेरी हिन्दू जाति जाग उठी, जी ही न उठी, वरन् इस योग्य हो कि शत्रुओं का मुंहतोड मुकाबला कर सके। इस यति का नाम दयानन्द स्वामी था। सदी का सारा संसार एक स्वर से हमारी हाँ में हाँ मिलाकर इस ब्रह्मचारी के प्रबल प्रताप को स्वीकार नहीं करेगा?

ब्रह्मचारियों की हमने इतनी महिमा गाई है। इसका अन्त कहीं नहीं है। हमें यही कहना है कि इन सबके हमारे जैसे हाथ, पैर, मुख, बुद्धि थी। अन्तर था तो इतना कि वे सब ब्रह्मचर्य-व्रत पर आरूढ़ थे और हम व्रत-भंग हैं। इसलिए संसार में

वे अमर हो गए और हम कौवों, कुत्तों की मौत मर रहे हैं ! ऐसी आवश्यक प्रथा का नाश होना किसको न अखरेगा ? जिसे जातित्व का अभिमान है, जिसमें वंश-मर्यादा की प्रतिष्ठा है, जिसके मन में पूर्वजों के अनुकरण करने के हौंसले हैं, वह इस अमूल्य पथ से ऋषि सन्तान को भ्रष्ट देख कर कैसे जीवित रह सकता है ? कैसे उसे चैन पड़ सकता है ? उसकी छाती पर विषैला छुरा घुपा पड़ा रहे और उसे चैन पड़े, यह कैसे हो सकता है ? आज भी बाल-विवाह की निकृष्ट प्रथा द्वारा ब्रह्मचर्य का लोप कर, विद्याभ्यास में बाधा डाल, समस्त वृद्धि का ही मूलोच्छेद किया जा रहा है। हाय ! यह बड़े ही संकट की बात है। ईश्वर हमें सुबुद्धि दे।

प्राचीन काल में गुरुकुलों की सुन्दर परिपाटी देश भर में थी। ये कुलगुरु एकान्त वनों में होते थे, इनके आचार्य पूर्ण विद्वान जितेन्द्रिय और तपस्वी होते थे। राजा और रंक सबके बालक यहां एक समान भाव से रहते और विद्याध्ययन करते थे। कृष्ण और सुदामा की अपूर्व मैत्री इन्हीं गुरुकुलों की बदौलत हुई थी। यहां नागरिक जीवन की दुर्गन्ध और निकम्मे दृश्य देखने को न मिलते थे ! यहाँ बचपन से भर पूर जवानी तक लड़के-लड़कियां आनन्द, उत्साह और शान्ति से शरीर और आत्मा को पुष्ट बनाते थे और फिर वे सच्चे गृहस्थ बन कर जीवन के चार फल धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति करते थे। ऋषि दयानन्द ने संस्कार-विधि में उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी को जो सुन्दर उपदेश किया है, वह इस प्रकार है—

'तू आज से ब्रह्मचारी है। नित्य सन्ध्योपासना किया कर। भोजन से पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर। दुष्ट कर्मों को छोड़, धर्म किया कर। दिन में शयन कभी मत कर। आचार्य के अधीन रह नित्य सांगो पांग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर। एक-एक वेद सांगोपांग पढ़ने के लिए 12 वर्ष—कुल 48 वर्ष चाहिए। जब तक तू पूरे तौर से वेदों को न पढ़ ले, अखण्ड ब्रह्मचारी रह। आचार्य के अधीन धर्माचरण में रहाकर। परन्तु यदि आचार्य अधर्म और मिथ्या उपदेश करे तो उसे कभी न कर। क्रोध और मिथ्याभाषण मत कर। अष्ट प्रकार के मैथुन—स्त्री का स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य-भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया निवृत्ति से बचा रह। भूमि में शयन करना, पलंग पर न सोना। गाना, बजाना, नृत्य, गन्ध, अञ्जन, अति-स्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अति जागरण, निद्रा, लोभ, मोह, भय, शोक, कुविचार मत ग्रहण कर। रात्रि के चौथे पहर में जाग। नित्य-क्रिया स्नानादि से निवृत्त हो, ईश प्रार्थना और उपासना नित्य किया कर। मांस रूखा-सूखा अन्न, मद्य मत सेवन कर। तेल मत मल। अति खट्टा, तीखा, कषैला, क्षार और रेचक द्रव्य मत सेवन कर। नित्य युक्ति से आहार-विहार करके सुशील और थोड़ा बोलने वाला बन तथा सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर।

क्या ही अच्छा हो कि देश भर के माता पिता और गुरु अपने बच्चों को इन उपदेशों पर चलाने की चेष्टा करें।

(आर्य सन्देश 27-11-88)

स्वदेशी

एक समय वह था, जब भारतवर्ष संसार का सबसे अधिक सम्पत्तिवान् और वैभवशाली देश समझा जाता था। हमारे प्राचीन-साहित्य तथा इतिहासकारों के ग्रन्थों से विदित होता है कि उस काल में यहाँ पर कदाचित ही कोई व्यक्ति भूखा, नंगा दिखलायी पड़ता था और सैकडों वर्षों में कभी एक बार दुष्काल का नाम सुनने में आता था। उस युग में शस्य-श्यामला भारतभूमि कामधेनु बनी हुई थी और यहां सचमुच ही घी-दूध की नदियाँ बहती थी। यहाँ के सोने, चाँदी और जवाहरातों का वर्णन सुनकर विदेशियों के मुह में पानी भर आता था और वे इस देश का मार्ग ढूंड़ने के लिए व्याकुल होकर इधर-उधर भटकते फिरते थे। परन्तु जब से हमारे देश पर विदेशियों का आधिपत्य शुरू हुआ, हम अपनी चीजों का आदर करना भूल गये और विदेशी वस्तुओं का मोह करने लगे। तभी से हमारा पतन आरम्भ हुआ और लक्ष्मी-स्वरूपिणी भारत माता दीन-हीन भिखारिणी बनने लगी। आज प्रतिवर्ष करोड़ों नहीं, अरबों रूपयों के माल का आयात इस भूमि पर होने लगा है। यदि हम इस शोचनीय अवस्था से निकलकर पुन: अपने प्राचीन वैभव को प्राप्त करना चाहते हैं, तो विदेशियों की भाँति हमें भी, 'भारतीय बनो, भारतीय सामान का उपयोग करो" इस आदर्श वाक्य के अनुसार आचरण करना चाहिए। यदि प्रत्येक भारतीय नर-नारी मनसा कर्मणा यह प्रतिज्ञा कर ले कि वे अपने देश की बनी बस्तुओं को त्याग कर कभी विदेशी वस्तुओं की आकांक्षा नहीं करेंगे, चाहे वे कैसी भी सस्ती और सुन्दर ही क्यों न हों, और जो वस्तुएं अभी देश में उपलब्ध नहीं हैं, उनका प्रयोग जहां तक बन पड़ेगा कम कर देंगे, तो थोड़े समय में ही हमारी वर्तमान आर्थिक अवस्था में आश्चर्य जनक परिवर्तन आ जायेगा, और हम विश्व के अन्य पूर्णतया स्वावलम्बी राष्ट्रों के निवासियों की तरह सुखी और स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

(आर्य सन्देश, 4-12-88)

"जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उनके उद्देश्यानुसार आचरण स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है आगे भी होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करे इसलिए जैसा 'आर्यसमाज' आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य युवा महासम्मेलन

मनुष्य जीवन में कई अवस्थाओं को पार करता है—बालक, किशोर युवा, प्रोढ़ और वृद्ध। यदि हम ध्यान दें तो कार्यक्षमता सर्वाधिक युवाओं में होती है। सृजन और निर्माण में सर्वाधिक योगदान युवा-शक्ति का ही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि नये आविष्कार और नई विचारणाओं का सृजन युवा मस्तिष्क की देन ही रही है। बौद्धिक पक्ष के साथ कर्म पक्ष में भी युवाओं का ही योगदान अधिक रहा है। स्वाधीनता संग्राम में शहीद भगत भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल अशफाकउल्ला खाँ, लाला लाजपतराय, सुभाषचन्द्र बोस, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि की भूमिका से सभी परिचित हैं। उस दौर में ये सभी युवा थे। किसी देश की संस्कृति और सभ्यता की रक्षा का भार भी इन्हीं पर है। राष्ट्र की रक्षा का भी मूलाधार युवा शक्ति ही है। सक्षमता का साक्षात्कार युवा शक्ति में ही होता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, युवा शक्ति संगठित करने के लिए तथा उन्हें निश्चित पथ पर अग्रसर करने-कराने हेतु पिछले पांच वर्षों से निरन्तर आर्य युवा महा-सम्मेलनों का आयोजन किया गया है। देश, धर्म, राष्ट्र, सभ्यता और संस्कृति के अध्ययन के लिए युवाओं में प्रेरणा का संचार करना ही इन सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य रहा है और इस कार्य में सफलता भी मिली है। इन आयोजनों की देखा देखी दिल्ली की सभी आर्यसमाजों में वार्षिकोत्सवों के अवसर पर युवा-सम्मेलन भी किए जाने लगे हैं। सन्तोष का विषय यह है कि इन कार्यक्रमों का सम्पूर्ण आयोजन युवाओं के ही हाथ में है।

इस वर्ष आर्य युवा महासम्मेलन के अन्तर्गत ये कार्यक्रम किए गए। सर्वप्रथम श्री रतन चन्द्र सूद आर्य पब्लिक स्कूल विनय नगर में 5 नवम्बर 1988 को चित्रकला एवं निबन्ध प्रतियोगितायें, कक्षा 1 से 12 तक के बच्चों के लिए आयोजित की गयीं। प्रतियोगियों को तीन वर्गों में बांटा गया। इस कार्यक्रमों की संयोजिका प्रिंसिपल श्रीमती अनीता कपिला ने उत्साहपूर्वक अपना दायित्व वहन किया। 12 नवम्बर को बिरला आर्य कन्या सिनियर सैकन्ड्री स्कूल कमला नगर में वाद-विवाद प्रतियोगितायें कक्षा 1 से 12 तक के बच्चों के लिए तीन वर्गों में विभाजित करके की गयीं। इसकी संयोजिका प्रिंसिपल श्रीमती सुशीला सेठी थीं। 14 नवम्बर को सहदेव मलहोत्रा आर्य पब्लिक स्कूल पंजाबी बाग में प्रिंसिपल श्रीमती बृजबाला भल्ला के संयोजन में खेल-कूद प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं। इसी दिन आर्य वीर दल के छात्रों के लिए भी शिक्षक श्री कृष्णपाल के संयोजन में खेल कूद प्रतियोगितायें हुई। 19 नवम्बर को रघुमल आर्य कन्या सीनियर सेकन्ड्री स्कूल राजा बाजार में प्रिंसिपल श्रीमती चन्द्रा

किनरा के संयोजन में भाषण प्रतियोगितायें उपर्युक्त तीन वर्गों के लिए आयोजित की गयीं। 26 नवम्बर को प्रिंसिपल श्रीमती शीला सेठी के संयोजक में सत्य आवां आर्य कन्या सीनियर सैकण्डरी स्कूल करोलबाग में समूह गान प्रतियोगितायें उपर्युक्त तीनों वर्गों के लिए आयोजित की गयीं। 3 दिसम्बर को केवल बालिकाओं के लिए बाली-बाल प्रतियोगितायें रतन देवी कन्या सीनियर सैकण्डरी स्कूल कृष्ण नगर में प्रिंसिपल श्रीमती सुशीला गोयल के संयोजन में आयोजित की गयीं।

मुख्य समारोह 14 जनवरी 1989 को तालकटोरा इण्डोर स्टेडियम में होगा। इस समारोह में विभिन्न विद्यालयों की टीमें पी० टी० डम्बल, लेजियम के अतिरिक्त योग आदि की सामूहिक प्रतियोगिताओं में भाग लेंगी। उसी दिन लगभग 500 पुरस्कार भी वितरित किए जायेंगे।

—आर्य संदेश 11-12-88

जोधपुर नरेश को पत्र

आप महाराजकुमार की शिक्षा के लिए किसी मुसलमान वा ईसाई को मत रखिएगा। नहीं तो महाराजकुमार भी इनके दोष सीख लेंगे। और आपकी सनातन राजनीति को न सीखेंगे, न वेदोक्त धर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी। क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है, वही दृढ़ हो जाता है। उसका छूटना दुर्घट है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती
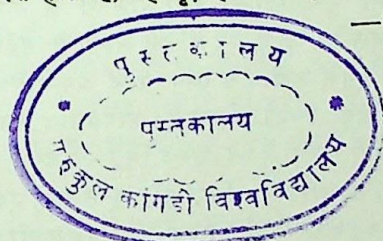
प्रो. शेरसिंह

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नए कुलाधिपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का कुलाधिपति तीन वर्षों के लिए निर्वाचित होता है। इसके लिए तीनों आर्य प्रतिनिधि सभाओं—-पंजाब, हरियाणा और दिल्ली के प्रधानों की बैठक में निर्णय लिया जाता है और बाद में शिष्ट परिषद् की बैठक में इसकी सम्पुष्टि होती है। डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार 1985 में इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति बने थे। वे इसी गुरुकुल के स्नातक हैं और वे यहीं पर अध्यापक, प्राध्यपक, प्रोफेसर और कुलपति भी रहे हैं। पिछले तीन वर्षों से उन्होंने इस पद को सुशोभित किया था। डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकर पेरिस से डी० लिट् हैं और सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैं। अपने कार्यकाल में उन्होंने 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के उत्थान के लिऐ कई योजनायें दी हैं और वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्वीकार कर ली हैं। उनके कार्यकाल में यहां पर कई आधुनिक पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किए गए। कम्यूटर, योग और पत्रकारिता के पाठ्यक्रम इसी काल में प्रारम्भ किए गए। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी कुलमाता की सेवा प्राणपण से की। यद्यपि वे इस समय कुलाधिपति पद से निवृत्त हो रहे हैं, पर वे इस संस्था से सदैव सम्बद्ध रहेंगे, ऐसा सभी का विश्वास है। वे इसके उत्थान के लिए सदैव प्रयत्नशील रहेंगे। उन्होंने आर्यजगत् के ऊपर एक और बड़ा उपकार किया है। आर्यसमाज का इतिहास सात भागों में उन्होंने अभी अभी पूरा किया है जो उनके लिए गौरवपूर्ण उपलब्धि है ही, आर्यसमाज की भी एक महती उपलब्धि है। शिष्ट परिषद् ने उन्हें एक और महत्वपूर्ण कार्य सौंपा है और उस कार्य को करने में वे ही एक मात्र सक्षम भी हैं। उन्हें गुरुकुल कांगड़ी का इतिहास लिखने का कार्य सौंपा गया है इतिहास लेखन कोई आसान काम नहीं होता। कुछ तथ्य ऐसे होते हैं, जो मात्र हवा में तैरते हैं, उनका रिकार्ड नहीं होता, ऐसे तथ्यों का उपयोग कर पाना एक कठिन कार्य होता है। कुछ बातें रिकार्ड में होती हैं, पर उसका वातावरण पर, भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह बात भी लेखक के मन को उद्वेलित करती है। इन सब के प्रति न्याय कर पाना, एक असाध्य कार्य नहीं दुःसाध्य कार्य अवश्य है।

डा० सत्यकेतु विद्यालंकर जैसा परिश्रमी और मेघावी व्यक्ति ही इस इतिहास को लिख सकता है। गुरुकुल कांगड़ी का इतिहास एक संस्था का इतिहास नहीं है, बल्कि वह आर्यसमाज का ही इतिहास है। आर्यसमाज के सिद्धान्तों का इतिहास है। आन्दोलनों का इतिहास है सामाजिक सिद्धान्तों के विकास का इतिहास है और इन सबसे ऊपर यह स्वाधीनता संग्राम का इतिहास है। इस संस्था ने ऐसे रणबांकुरे देश को दिए जो अपने अपने क्षेत्र में आज भी देदीप्यमान हैं। उन सबका इतिहास डा०

साहब,को लिखना होगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, सम्पूर्ण विश्व की आर्यसमाज की प्रतिनिधि सभाओं में शक्तिशालिन रही है। आज इस सभा के कई टुकड़े हो चुके हैं। बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान में चला गया। जम्मू-कश्मीर की अलग सभा बन गयी। हिमाचल प्रदेश में अलग सभा बन गयी और बची हुई पंजाब सभा का—पंजाब हरियाणा और दिल्ली सभाओं के रूप में त्रिशाखन हो गया है। गुरुकुल कांगड़ी और सम्बद्ध संस्थाओं का संचालन इन तीनों सभाओं का संयुक्त दायित्व है।

गुरूकुल काँगडी विश्वविद्यालय तथा उसके अंगभूत कालेज —वेद और कला महाविद्यालय, विज्ञान महाविद्यालय, मैडीकल कालेज, आर्य कन्या महाविद्यालय गुरूकुल कांगडी विद्यालय विभाग, गुरूकुल कांगडी फार्मेसी स्वामी श्रद्धानन्द चिकित्सालय,पुण्य भूमि कांगडी ग्राम, डा० हरिराम आर्य इण्टरकालेज मायापुरी और आर्य इण्टर कालेज ज्वालापुर' कन्या गुरुकुल देहरादून आदि सभी संस्थाओं का इतिहास एक साथ लिखा जाएगा। प्रकारान्तर से उन संस्थाओं का इतिहास आएगा जो इसकी अंगभूत संस्थायें थीं। अथवा इससे संबद्ध थीं। कहना ना होगा कि यह एक बहुत ही कठिन कार्य है और डा० साहब पर इसकी जिम्मेदारी सौंपी गयी है और वे स्वयं तथा जिस किसी का भी वे चाहें उनका सहयोग लेकर अपने स्वभाव के अनुसार शीघ्र ही इस कार्य को पूरा करेंगे। इस प्रकार कुलाधिपति से निवर्तमान होते हुए भी वे गुरुकुल में ही हैं।

प्रो० शेरसिंह जी का कुलाधिपति पद के लिए चयन तीनों सभाओं के प्रधानों की 17 सितम्बर की बैठक में बहुसम्मति से किया था। यह हर्ष का विषय है कि प्रोफेसर साहब के नाम की सीनेट की 13 नवम्बर की बैठक में सर्व सम्मति से कुलाधिपति पद पर चयन की सम्पुष्टि की गयी। इस प्रकार एक सद्भावऔर सहयोग का वातावरण बना।

प्रोफेसर शेरसिंह जी के कुलाधिपति बनने पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के समुज्ज्वल भविष्य की विश्वस्त आशायें बँधी हैं। प्रोफेसर साहब शिक्षाविद् तो हैं ही, उनका प्रशासन का भी लम्बा अनुभव है। साथ ही समाज सेवा की कार्यावधि भी बहुत लम्बी है। उनके कार्यक्षेत्र का फलक भी किन्हीं सीमाओं में नहीं बंधा रहा है। अविभाजित भारत के पंजाब प्रान्त के वे एम. एल. ए. रहे, मन्त्री रहे और बाद में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंजाब प्रान्त में तो उनकी सक्रियता रही ही, पंजाब और हरियाणा के विभाजन के समय दोनों प्रान्तों के अधिकारों के समन्वय में भी उनकी भूमिका विशिष्ट रही है। हरियाणा रक्षा वाहिनी के माध्यम से उन्होंने पंजाब प्रान्त को कोई नुकसान न पहुंचाते हुए हरियाणा के हितों के लिए सदैव सफल संघर्ष किया।

केन्द्रीय सरकार में आने पर उन्होंने कई विभागों को सफल नेतृत्व प्रदान किया। शिक्षा, संचार, समाज कल्याण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा प्रतिरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विभागों में प्रोफेसर साहब केन्द्रीय मन्त्री रहे हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति

उनकी अगाध निष्ठा के फल स्वरूप ऐसी योजनायें स्वीकृत हुई जिनसे देश का नाम उज्ज्वल हुआ सम्पूर्ण देश में उन्होंने केन्द्रीय मन्त्री के नाते भ्रमण किया तथा भारतीय जनता का मार्ग दर्शन किया।

इसके अतिरिक्त वे विदेशों में भी गए और वहाँ पर भारतीय शिष्टमंडलों के सदस्य के रूप में भारत के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया तथा सफलता प्राप्त की। चीन और पाकिस्तान की यात्राओं के दौरान भी उन्होंने भारत के हितों के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। अमेरीका, रूस, आस्ट्रेलिया और यूरोप तथा अफ्रीका की अनेक देशों में भी वे सद्भावना यात्राओं पर गये। गुरुकुल की शिक्षा पद्धति के प्रति तो उनका अगाध स्नेह सर्वविदित है।

प्रोफेसर साहब शिक्षाविद् हैं। अनेक संस्थाओं के सुसंचालन में उनका सहयोग है। हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान हैं और इस समय हरियाणा में ही सर्वाधिक गुरुकुल हैं। गुरुकुलीय परम्परा से भली भांति परिचित हैं। गुरुकुल कांगड़ी की भी उन्होंने समय-समय पर सहायता की है। अतः यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि प्रोफेसर साहब के कुलाधिपतित्व काल में यह संस्था अपने गौरव के अनुकूल प्रगति करेगी। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इस संस्था के अनेक समस्यायें रही हैं और आज भी है। कांगड़ी ग्राम में स्थित पुण्यभूमि की ओर ध्यान दिया जाना भी आवश्यक है। यहाँ पर भी नये नये कोर्स प्रारम्भ करने की मांग समम समय पर उठती रही है और नये कोर्स प्रारम्भ भी किए गए, पर यह संस्था स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने जिन आदेशों के लिए प्रारंभ की थी और बाद में आचार्यों ने भी इसे जिन आदेशों के लिए पल्लवित किया था, उन आदेशों का संरक्षण एवं संवर्धन यहाँ पर अवश्य किया जाना चाहिए। पुरानी भूमि में कृषि कालेज खोला जा सकता है या योगसाधना से सम्बन्धित कालेज खोला जा सकता है। उसमें आधुनिकता तो हो पर उसकी आधार भूमि वेदसम्मत भारतीय परिवेश तथा भारतीय ज्ञान को ही होनी चाहिए।

गुरुकुल कांगड़ी के हितैषियों का प्रोफेसर साहब को पूरा पूरा सहयोग मिलेगा और निश्चय ही यह गुरुकुल अपने गौरव को प्राप्त करेगा, ऐसी हमारी कामना हैं।

13 नवम्बर 1988 को अपराह्न से प्रोफेसर शेरसिंह जी ने कुलाधिपति पद का कार्यभार संभाल लिया। इसी संदर्भ में 15 नवम्बर 1988 को विश्वविद्यालय के वेदभवन में प्रोफेसर शेरसिंह जी का स्वागत समारोह आयोजित किया गया। यज्ञोपरान्त पुष्पमालाओं से प्रोफेसर शेरसिंह जी का तथा डा० सत्यकेतु विद्यालकार का अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जयदेव वेदालंकार ने प्रोफेसर साहब के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए आशा व्यक्त की कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय प्रगति के सोपान पर सतत आरूढ़ होता चलेगा। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने गुरुकुल के साथ अपने गहरे सम्बन्धों का विवरण देते हुए,

विश्वास व्यक्त किया कि उनका जीवन सदैव गुरुकुल के उत्थान के लिए अर्पित रहेगा। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान डा० धर्मपाल ने कहा कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के वैभव के साथ साथ हमें गुरुकुल कागड़ी के विद्यालय विभाग को भी देखना चाहिए क्योंकि विश्वविद्यालय की आधारभूमि वही है। आजकल जो स्नातक इस विश्वविद्यालय से निकलते हैं, उन्हें गुरुकुलीयता का पता ही नहीं है। हमें विद्यालय विभाग को भी पल्लवित करना चाहिए क्योंकि असली गुरुकुल तो वही है। डा. हरिप्रकाश ने कहा कि मेरी कामना है कि प्रोफेसर साहब इस कष्टकाकीर्ण मार्ग पर बिना किसी बाधा के आगे बढ़ते रहें। पूर्व कुलपति आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति और श्री बलभद्र कुमार हूजा ने भी अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया। कुलपति प्रोफेसर आर. सी. शर्मा ने विश्वविद्यालय की गत तीन वर्षों की उपलब्धियों का जिक्र करते हुए विश्वास दिलाया की वे विश्वविद्यालय की प्रगति के लिए यथाशक्ति प्रयास करते रहेंगे। कर्मचारियों के प्रतिनिधि श्री वेदपाल ने पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। श्रीमती प्रभात शोभा पण्डिता ने वैदिक ऋचाओं के गायन के साथ अपना वक्तव्य आरम्भ किया और भावविह्वल होकर कहा कि यह मेरा मायका है। मैं यहाँ लौटकर आयी हूं। हमारा किसी प्रकार का भी स्वार्थ नहीं है। मैं इसके लिए कुछ कर सकूं तो अपने को धन्य समझूंगी। अन्त में प्रोफेसर साहब ने सभी का धन्यवाद करते हुए कहा कि मेरे लिए अधिकार का कोई अर्थ नहीं है, मेरा अधिकार तो कर्तव्य में नियन्त्रित है। संस्था के हित में कार्य करते हुए यदि किसी प्रकार की बाधा आती है, तो अधिकार प्रयोग की कोई सीमा नहीं होगी। मैं वही करूंगा जो संस्था के हित में आवश्यक होगा।

अगले दिन गुरुकुल कांगड़ी के विद्यालय विभाग में भी प्रोफेसर साहब का स्वागत किया गया। इस अवसर पर प्रो० शेरसिंह, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रो. आर. सी. शर्मा, डा. धर्मपाल, श्री अर्जुनदेव, डा. हरिप्रकाश, डा. निरूपण विद्यालंकार तथा श्रीमती प्रभात शोभा पण्डिता ने गुरुकुल के लिए अपना सहयोग देने का आश्वाशन दिया।

(आर्य सन्देश, 11-12-88)

"जब मनुष्य उत्तम गुणों से युक्त होता है, तब सब लोग सब प्रकार से उसका सत्कार करते हैं।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

हमें कब तक राष्ट्र भाषा का अपमान सहना होगा

समाचार पत्रों में यह पढ़कर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि 22 नवम्बर 1988 को राज्यसभा ने यह मत व्यक्त किया कि देश में सभी को अपनी मनचाही भाषा बोलने का अधिकार है। श्री एस० ए० अहलूवालिया ने राज्य सभा में बताया कि पंजाब में हिन्दी बोलने वालों पर जुल्म ढाये जा रहे हैं। उन्होंने बताया कि बिहार से आये स्वर्णसिंह बग्गा को लुधियाना की एक अदालत में हिन्दी बोलने से रोका गया। उनका कहना था कि अदालत में हिन्दी बोलने की वजह से उन्हें न सिर्फ हत्या की धमकियां दी गई बल्कि उन्हें मारा पीटा गया और उनकी बहिन का अपहरण भी कर लिया गया। इसके बावजूद भी श्री बग्गा ने कहा कि वे अदालत में सिर्फ हिन्दी में बोलेंगे क्योंकि अपनी भाषा में बोलना उनका अधिकार है।

एक अन्य उदाहरण भी पंजाब में हिन्दी के अपमान का सामने आया है। लक्ष्मीकान्ता चावला, गली नरसिंह दास, अमृतसर पंजाब का पिछले दिनों सम्पादक के नाम एक पत्र पढ़ा था। उन्होंने लिखा था कि दो अक्तूबर 1988 को उन्होंने चण्डीगढ़ टेलीफोन एक्सचेंज से अमृतसर के लिए काल बुक कराने के लिए अपना फोन नम्बर हिन्दी में बताया तो ड्यूटी पर तैनात कर्मचारी गर्म हो उठा और उसने डांटकर कहा कि फोन नम्बर अंग्रेजी में बताओ। इससे पहले भी उन्हें 1969-70 में एम.ए. संस्कृत की परीक्षा के प्रश्न पत्र भी अंग्रेजी में लेने पड़े थे। 1972 में पुन: जब उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से ज्ञानी परीक्षा के लिए गलती से या जान बूझकर फार्म हिन्दी में भर दिया तो उन्हें परीक्षार्थी ही नहीं माना गया। 1976 में गुरूदेव नानक विश्वविद्यालय का एल. एल. बी का प्रवेश फार्म भरा तो खूब डाँट मिली थी। इसी विश्वविद्यालय में एक शोधनिबन्ध केवल इसलिए प्रस्तुत करने से रोक दिया गया था, क्योंकि यह हिन्दी में लिखा था। यहां तक कि लोहिया मशीन्स कानपुर की स्कूटर बुकिंग का फार्म भी हिन्दी में भरने के कारण रद्द हो गया था।

दिल्ली के प्रगति मैदान में समय समय पर व्यापार मेलों का आयोजन होता रहता है। वहाँ पर उत्तर प्रदेश का भी मण्डप होता है। आज तक मण्डप अपनी उत्तर प्रदेशीय सांस्कृतिक विरासत का प्रभाव आने जाने वालों पर नहीं छोड़ पाया। पंजाब मंडप में मक्का की रोटी, सरसों का साग मिलेंगे, तमिलनाडु मंडप में डोसा बड़ा मिलेंगे पर उत्तर प्रदेश मंडप में काफी ही मिलेगी। क्या उनके अपने व्यंजन नहीं हैं। हमें इससे तो दुख: नहीं होता। हमें दुःख इस बात का है कि वहाँ पर जितने भी सूचना पट थे, उन सब में अंग्रेजी का बोल बाला था और हिन्दी से परहेज था। क्या अपने घर भी हिन्दी की यही दुर्गति होनी चाहिए।

यह सब कितनी अजीब बात है। हम हिन्दी के सम्मान की बात करते हैं। हम खूद हिन्दी दिवस मनाते हैं। हिन्दी में काम करने की कसमें खाते हैं। परन्तु जब व्यवहार में हिन्दी लाने की बात होती है तो वही ढाक के तीन पात। अक्सर लोग राष्ट्रभाषा हिन्दी की वकालत करते मिल जाते हैं। मगर सच तो यह हैं कि जो हिन्दी की वकालत करते हैं, वे भी अंग्रेजी का सहारा लिए बिना, अपनी बात समझा नहीं पाते। हमारे कुछ नेता तो यह भी कहते सुने गए कि वे अंग्रेजी शब्दों का बातचीत में प्रयोग इसलिए करते हैं, ताकि लोग यह न समझ बैठें कि उन्हें अंग्रेजी नहीं आती। इसी कारण वे अपनी प्रेस कान्फ्रेंस में जरूर अंग्रेजी बोलते हैं। मानों अंग्रेजी जानना हो संभ्रान्तता की निशानी ही हमारे सारे दस्तावेज अंग्रेजी में होते है। शादी ब्याह और जन्मदिन के निमन्त्रण पत्र अंग्रेजी में छपाए जाते हैं। ऐसा लगता है कि हिन्दी में कार्ड छपाने वाले तो सभी जाहिल होते हैं। हमारी मानसिकता विकृत हो चुकी है।

दीवाली या नव वर्ष के अवसर पर आप बाजार में जायें तो हिन्दी में छपा शुभकामना पत्र बहुत ही मुश्किल से मिलेगा। हम अंग्रेजी में लिखे छपे शुभकामना पत्र बहुत ही मुश्किल से मिलेगा। हम अंग्रेजी में लिखे छपे शुभ कामना पत्र ही खरीदते हैं और भेजते हैं। हम क्यों नहीं स्वयं छपवा लेते या हाथ से ही लिखकर भेजते। शायद यह सब हमारी शान के विपरीत है। हम केवल हिन्दी का ढिंढोरा पीटते हैं। हम हिन्दी की पूजा करते हैं। उसे व्यवहार में नहीं लाते।

बहुत ही कम लोग होंगे जो उन समारोहों का बहिष्कार करते हों जिनके निमन्त्रण पत्र उन्हें अंग्रेजी में मिलते हैं। हम बहिष्कार कर कैसे सकते हैं क्योंकि हमारे स्वयं के व्यवहार में अंग्रेजी रची बसी है, हिन्दी या संस्कृत को तो हमने भाषणों या पूजा पाठ की भाषा बना दिया है। किसी विदेशी भाषा का ज्ञान होना अच्छी बात है, पर उसे दिखावे की भाषा बनाना गलत है।

न जाने कितने वर्षों से हिन्दी प्रेमी चिल्ला रहे हैं कि संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं से अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त की जायें, पर यह समाप्त नहीं हो रही है। कालेजों में भी हिन्दी के तो विकल्प हैं, परन्तु अंग्रेजी अनिवार्य है। यह अनिवार्य उस समय तक रहेगी, जब तक हमारी कथनी और करनी अलग-अलग रहेंगी।

यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी हो तो हमें हिन्दी को व्यवहार में लाना होगा। पिछले दिनों भारत में रूस के राष्ट्रपति श्री गोर्बाचोव आये। वे अपनी भाषा में बोले और हमारे नेता अंग्रेजी में बोले। वे यह भूल गए कि वे वाशिंगटन या लन्दन में नहीं है, बल्कि दिल्ली में बोल रहे हैं। नहीं ऐसी बात नहीं है। वे भूले नहीं थे। उन्हें पता था कि वे दिल्ली में बोल रहे हैं। असलियत यह है कि वे हिन्दी को अपनी भाषा नहीं मानते। वे तो अंग्रेजी को अपनी भाषा मानते हैं। पिछले दिनों मद्रास में भी यह सब हुआ। पता नहीं, हमें कब तक राष्ट्रभाषा का अपमान सहना होगा।

(आर्य सन्देश 18-12-88)

"हिन्दी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आग्नेय श्रद्धानन्द

युग-प्रवर्त्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के महान् कार्यों को जिन अमर हुतात्माओं ने कार्य रूप में परिणत किया, उनके महत्तम वैदिक आदर्शों को आगे बढ़ाया— मूर्त्त रूप प्रदान किया, उनमें स्वामी श्रद्धानन्द का नाम अग्रगण्य है। बाल्य-काल में अपने माता-पिता की लाड़ली संतान होने के कारण यह नवयुवक बिगड़ चुका था। पिता कोतवाल के पद पर थे। अंग्रेजी शासन काल में कोतवाल का अच्छा रुतबा रहता था, जिसका पूरा लाभ इस नवयुवक ने भी उठा लिया। बरेली में महर्षि स्वामी दयानन्द के भव्य ओजस्वी व्यक्तित्व का दर्शन कर और आत्मा, पर-मात्मा ,प्रकृति, धर्म आदि गूढ़ विषयों पर उनका तर्क पूर्ण प्रवचन सुनकर इस बिगड़े हुए नवयुवक का जीवन ही परिवर्तित हो गया। उस समय उस नवयुवक का नाम मुन्शीराम था। मुन्शीराम के जीवन में महर्षि दयानन्द के सदुपदेशों का इतना अधिक अमिट व क्रांन्तिकारी प्रभाव पड़ा कि आगे चलकर वही मुन्शीराम विश्व-विख्यात संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में देश, जाति व धर्म के उद्धारक बन गए।

मुन्शीराम के अल्हड़पन में नव क्रांन्ति का अद्भुत विस्फोट हुआ। उन्होंने महर्षि दयानन्द के सन्देश को घर-घर पहुंचाने, वैदिक धर्म प्रचार व प्रसार करने का दृढ़ संकल्प ले लिया। वह समय भारत के पतन व पराजय का समय था। महर्षि दयानन्द ने ज्ञान, क्रान्ति, शक्ति, जागृति, चेतना की जो मशाल जलाई थी, उसके प्रकाश की किरणें चतुर्दिक् विस्तीर्ण हो चुकी थीं। परिणामस्वरूप मुन्शीराम, लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, गुरुदत्त विद्यार्थी, श्याम जी कृष्ण वर्मा, महाशय राजपाल सदृश प्रभृति व्यक्ति धर्म व राष्ट्र के दीवाने बनकर कर्मक्षेत्र में कूद पड़े थे। वह भारत में धार्मिक-सामाजिक व राष्ट्रीय जागरण का काल था। महर्षि दयानन्द ने अपने ओजस्वी प्रवचनों, भव्य व्यक्तित्व, वेदों की अकाट्य ऋचाओं, अखण्ड ब्रह्मचर्य से प्रदीप्त नवोन्मेषशालिनीप्रतिभा, अज्ञानान्धकारापहारिणी प्रचण्ड शक्ति के माध्यम से सारे भारत ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता को झकझोर दिया था और वह अंगड़ाइयां लेने को बाध्य हो गई थी।

मुन्शीराम जी ने महर्षि दयानन्द के पश्चात् अपने जीवन व व्यक्तित्व को तपस्वी, कर्मठशील बनाकर वैदिक धर्म की सेवा में समर्पित कर दिया। उन्होंने धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक-शैक्षिक आदि समस्त क्षेत्रों में नव क्रांन्ति का मन्त्र फूंका। अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया और मुन्शीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गए। भारत में कांग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता का महान् संग्राम चल रहा था। महर्षि दयानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर लोकमान्य तिलक सरीखे कांग्रेस के कर्णधारों ने -'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध

अधिकार है" घोषित कर दिया था। तत्कालीन परिस्थितियों में प्रत्येक नागरिक का प्रथम कर्त्तव्य था—भारत मां को स्वाधीन कराना। महर्षि दयानन्द ने भी इसी कर्त्तव्य का बोध् सारे भारत की यात्रा करके कराया था। यही कारण था कि आर्य-समाज व उसके संचालकों ने स्वाधीनता संग्राम में बढ़कर भाग लिया। भारत माँ की बलिवेदी पर अपने प्राणों की आहुति देने वाले अमर शहीदों में से नव्वे प्रतिशत लोग आर्यसमाज के मंच से आए थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने भी कांग्रेस के कंधे से कंधा मिलाकर अपना पूरा योगदान स्वाधीनता युग में किया। पंजाब में कांग्रेस का अधिवेशन होने पर वह उसके स्वागताध्यक्ष बनाए गए थे। उन्हीं के परिश्रम से कांग्रेस का यह अधिवेशन अत्यन्त सफल हुआ।

शिक्षा-क्षेत्र में क्रान्ति—शिक्षा जगत् में क्रान्ति उत्पन्न करने हेतु स्वामी जी ने कांगड़ी, हरिद्वार में गुरुकुल की स्थापना की। इस गुरुकुल की प्रारम्भिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु जब तीस हजार रुपए नहीं एकत्र कर लिये, घर नहीं गए। आगे चलकर यह गुरुकुल भारत के महान् नेताओं, अगर क्रान्तिकारियों, विदेशी पर्यटकों के महान् आकर्षण का केन्द्र बन गया। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों से परिश्रम कराकर स्वामी श्रद्धानन्द ने काफी धन दक्षिण अफ्रीका में मोहनदास करमचन्द गांधी को भेजा, जिससे वहां पर उनका असहयोग आन्दोलन सफल हो सके। यही कारण था कि गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से विजयी होकर जब भारत लौटे, तब सर्व प्रथम वे स्वामी श्रद्धानन्द के दर्शन करने के लिए गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय गए। स्वामी जी ने ही सर्व प्रथम गांधी जी को महात्मा गाँधी की उपाधि से गुरुकुल में ही सम्बोधित किया। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को राष्ट्रभक्ति, भाषा-भक्ति, धर्म-भक्ति की शिक्षा के साथ ही साथ राष्ट्र का एक आदर्श नागरिक बनने की प्रेरणा दी जाती थी। इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधान मन्त्री रैम्जे मैकडानल्ड जब भारत आए, तब वह भी गुरुकुल देखने गए और उस समय जंगलों के बीच में, गंगा के उस पार गुरुकुल का दृश्य देखकर वह बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द की तुलना ईसामसीह के व्यक्तित्व से की। जब गुरुकुल की व्यवस्था पूर्णतया संभल गई तब स्वामी जी सामाजिक क्रान्ति की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने भारत का भ्रमण कर समाज में व्याप्त कुरीतियों, पाखण्ड, अन्धविश्वास पर कुठाराघात किया। अछूतों की दयनीय दशा देखकर स्वामी जी को हार्दिक क्लेश हुआ। उन्होंने अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया। जगह-जगह पर अछूत सम्मेलन करके अछूतों के हाथ से पानी पिया और खाना खाया। जो अछूत भाई अपना धर्म परिवर्तन कर रहे थे, उन्हें भी स्वामी जी ने बचाया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने कार्यों, आचरण और अपने व्यवहार से किसी को दुखित नहीं किया। चाहे वह उनका सहयोगी रहा हो अथवा विरोधी। हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव के लिए उन्होंने दिल्ली की जामामस्जिद से वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ हिन्दू-मुस्लिम एकता का ऐतिहासिक सन्देश दिया, जिसे लाखों मुसलमानों ने बड़े धैर्य, गम्भीरता व चाव से सुना। हिन्दी भाषा के उद्धार के लिए तथा उसे राष्ट्र-

भाषा के पद पर पहुँचाने का बहुत बड़ा श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की स्थापना में स्वामी जी का पूरा सहयोग रहा है। वह सम्मेलन के सभापति भी थे। सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन, वह बड़ी निर्भीकता के साथ करते रहे। उन्होंने अपनी अकाट्य तर्क शक्ति से सम्पूर्ण समाज को प्रभावित किया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शुद्धि-आन्दोलन का भी सूत्रपात किया। अनेक विधर्मियों को पुन: हिन्दू धर्म में दीक्षित किया। सारे राष्ट्रों में शुद्धि-यज्ञ का डंका बज उठा। बड़ी संख्या में ईसाई व मुसलमान बने लोग पुन: अपने पूर्व धर्म (हिन्दू) में वापस लौटने लगे। उसी समय श्रीमती असगरी बेगम जो एक उच्च कुल से सम्बन्धित थीं, स्वामी जी के तर्कों से प्रभावित होकर सपरिवार वैदिक धर्म में आ गई। उनका शुद्धि संस्कार समारोह सम्पन्न हुआ। इस काण्ड से कठमुल्ले ढंग के कुछ मुस्लिम भाई बौखला उठे और 23 दिसम्बर 1926 को सायंकाल, जब स्वामी जी, दिल्ली में अपने आवास पर, रोगशय्या पर लेटे थे, तब अब्दुल रसीद नामक एक धर्मान्ध युवक ने उस महान् सुधारक पर धोखे से गोली चला दी। स्वामी जी की दुखद मृत्यु का समाचार सारे संसार में फैल गया। समस्त राष्ट्रीय नेताओं ने इस काण्ड पर महान् दु:ख व्यक्त किया। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी मतों के लोगों ने इस दुखद समाचार को सुनकर आंसू बहाए, क्योंकि स्वामी जी ने, अपने व्यवहार से चतुर्दिक्, मत-सम्प्रदाय-जाति की खाइयों को पार कर, सबके दिलों में अपना स्थान बना लिया था। इस प्रकार वह महान् सन्यासी धर्म की बलिवेदी पर शहीद हो गए।

स्वामी श्रद्धानन्द एक महान्-युगचेता सुधारक, अजेय व्यक्तित्व वाले निर्भीक संन्यासी, क्रान्तिकारी अग्नि सदृश प्रखर मेधा सम्पन्न जननायक थे। वह आजन्म प्रचण्ड तूफान की तरह बुराइयों, अन्धविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों से निरन्तर जूझते रहे। उनका व्यक्तित्व तूफानों से टकराते-टकराते जुझारू बन गया था। महर्षि स्वामी दयानन्द के महान् जीवन से उत्प्रेरित होकर यह आग्नेय संन्यासी अपने जीवन में कहीं पर भी, किंचित् भी हताश व निराश नहीं हुआ। इसी क्रान्तिदर्शक संन्यासी के कार्य कलापों ने भगतसिंह, रामप्रसाद विस्मिल जैसे अमर शहीदों के जीवन की दिशा निर्धारित की। स्वामी श्रद्यानन्द के समय का 'आर्यसमाज' सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और नेत्र अश्रु पूरित हो उठते हैं। काश ! आज इस वरेण्य व्यक्तित्व वाले आग्नेय संन्यासी के बलिदान दिवस पर हम ! आर्यसमाज के कार्य-कर्त्ता ! महर्षि दयानन्द के सैनिक ! देश और धर्म के लिए कुछ करने का व्रत लेते और उस महान् शहीद की अमर शहादत से कुछ प्रेरणा लेकर देश और धर्म पर मर मिटने का संकल्प लेते ?

(आर्य सन्देश, 25-12-88)

दिवंगत आर्य श्रेष्ठी

जहां भगवान् का, श्रेष्ठ-जनों का विस्मरण आपदा है, वहीं उनका स्मरण सच्ची सम्पदा है।

प्रायः हम उन्हें भूल जाते हैं, जिन्हें भूलना नहीं चाहिए; और उन्हें याद रखते हैं, जिन्हें भूल जाना चाहिए। थोड़ा उपकार कर हम बार-बार बखान करते है और भूलना नहीं चाहते। यही नहीं अपितु यदि कोई हमारा बुरा करता है तो उसे हम सदैव याद रखते हैं। ये दोनों बातें हमें अंधेरे में भटका रहीं हैं। प्रकाश का मार्ग तो यह है कि हम दूसरों के प्रति की गई भलाई को भूल जायें और दूसरों द्वारा की गयी अच्छाइयों को सदैव याद रखें। हम गम्भीरता से विचारें कि जिन्हें नहीं भूलना था उन्हें भूल बैठे, और भूल जाने की बातों को याद करते रहते हैं।

हम भूलते जा रहे हैं अन्यानेक बातों के साथ-साथ ऐसे "आर्य श्रेष्ठियों" को जो पिछले सौ वर्षों में दिवंगत हो गये-- जिन्होंने ऋषिवर दयानन्द और उनके मिशन आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रचार प्रसार में अपने आप को होम कर दिया—बिना किसी निजी स्वार्थ के। यह कैसी विडम्बना है कि उनमें से बहुतों के नाम भी आज हमारी पीढ़ी को पता नहीं हैं। उन श्रेष्ठ आर्यजनों को हमने अपनी भूल की धूल से ढक दिया है। इसका एक कारण यह भी जान पड़ता है कि हमारा ध्यान अब राजनीतिज्ञों पर केन्द्रित होता जा रहा है। ये राज-पुरुष चाहें इनका सम्बन्ध वैदिक-सिद्धान्तों और आर्यसमाज से दूर तक का भी न रहा हो, आर्य विद्वानों, त्यागी और तपस्वियों तक को उपदेश देने लगते हैं, और उनको सही मार्ग भी दिखाने लगते हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि आर्यजगत् के श्रेष्ठ आर्यजन अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बल पर सदैव अमर रहेंगे, भले हो उनके नाम राजनीति की धुन्ध में साफ-साफ न दिख पायें, परन्तु निस्सन्देह उनका यश स्थायी रहेगा।

जीवित व्यक्तियों का वृत्त जान लेना जितना सरल है, उतना ही कठिन और श्रम साध्य है दिवंगत व्यक्तियों का भूला-बिसरा, जीवनवृत्त संकलित करना। फिर भी हमारा यह प्रयास होगा कि "आर्यसन्देश" अपने प्रत्येक अंक के द्वारा अपने उन "दिवंगत आर्य श्रेष्ठियों"—जिन्होंने मानव मात्र के कल्याण हेतु वैदिक मान्यताओं के आधार पर अपने उपदेशों से, भाषणों से और साहित्य से, आर्य जगत्, को आलोकित किया है—का संक्षिप्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व अपने पाठकों के सामने लायें। हमारा यह भी प्रयास रहेगा कि आर्य श्रेष्ठियों के परिचय उनके जन्म माह अथवा निधन माह में प्रकाशित होने वाले अंक में ही दें।

प्रबुद्ध पाठकों से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वें हमें अपने उपयोगी सुझावों केसाथ-साथ "दिवंगत अर्थ श्रेष्ठियों के लिए उपयुक्त सामग्री भी भेजकर, इस यज्ञ में अपनी आहुति दें।

(आर्यसन्देश 1-1-89)

नेपाल में भारतीय

यह सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय मूल के लोग आज विश्व के सभी कोनों में फैले हैं। उन्होंने वहां पर अपने उद्योग, व्यवसाय भी प्रारम्भ किए हैं और कुछ लोग अन्य देशों में नौकरी भी कर रहें हैं। हमारे देशवासी अरब खाड़ी के देशों में अध्यापन, वास्तुकला, अभियांत्रिकी, व्यापार आदि के कार्यों में रत हैं। वे इन देशों में पिछले कुछ वर्षों से ही गए हैं। पर कुछ ऐसे देश हैं जहां पर भारतीय आज से डेढ़ सौ, दो सौ या उससे भी ज्यादा साल पहले गए थे। चीन, नेपाल, कम्बोडिया, तिब्बत, थाईलैण्ड, बरमा, श्री लंका आदि देश ऐसे ही हैं, जिनके साथ हमारे बहुत पुराने सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबन्ध है। कुछ ऐसे देश हैं जहां पर भारतीय कुली या गुलाम के रूप में गए और अपने अध्यवसाय से वहां के जीवन में स्थापित हो गए। फिजी, सूरीनाम, ब्रिटिश, गाइना, मारीशस, दक्षिण अफ्रीका, कन्या हालैण्ड ऐसे ही देश हैं। वहां की समृद्धि में भारतीयों का खून पसीना लगा हुआ है। पर यह दुख के साथ कहना पड़ता है कि भारतीयों के साथ आज भी वहां पर विदेशियों जैसा ही सलूक किया जाता है। फिजी में भारतीय बहुसंख्यक हैं, फिर भी कर्नल राबूका का आदेश है कि या तो ईसाई बन जाएं या देश छोड़ जाएं, हमारे लिए एक चुनौती है। सार्वदेशिक सभा के प्रधान के नेतृत्व में भारत के आर्यजनों ने इस संबन्ध में आवाज उठाई थी। हमें सफलता भी मिली। केन्या से जिन लोगों को भगाया गया था, उससे आप सभी परिचित है। वहां भारतीयों की आपार सम्पदा है, पर उन्हें छोड़नी पड़ रही है, दक्षिण अफ्रीका में स्वयं महात्मा गांधी भी गए थे। भाई परमानन्द गए। भवानीदयाल गए। पिछले दिनों नरदेव वेदालंकार वहां से दिल्ली आए थे। उनका थी यही दर्द था कि भारतीयों के साथ सही सलूक नहीं किया जाता और भारतीय भारतीयता से विमुख हो रहे हैं। श्रीलंका, हालैण्ड, कम्बोडिया, थाइलैण्ड, तथा अन्य देशों की भी यही समस्या है। अरब की जेलों में बन्द और बाद में आर्यसमाज के प्रयास से रिहा किए गए रामकुमार भारद्वाज की कहानी भी आप नहीं भूले होंगे। वहां पर भारतीयों का दाह संस्कार भी करने पर पाबन्दी है। निर्गुट और दक्षिणेश सम्मेलनों से भारत को सम्मान मिला है, पर आवश्यकता इस बात की है कि विदेशों में बसे भारतीयों के हितों की रक्षा की जा सके।

यही समस्या पिछले दिनों नेपाल में भी आई है। नेपाल विश्वभर में एक मात्र हिन्दू देश है, पर वहां भी भारतीय हिन्दुओं के साथ सौतेला व्यवहार किया जाता है। नेपाल में भारतीय पीढ़ियों से व्यापार कर रहे हैं, पर अब वहां पर अब नेपाली नागरिकता प्राप्त भारतीयों को भी नेपाल छोड़ने के लिए विवश किया जा रहा है। नेपाल के नेताओं के इशारे पर 'भारतीय भगाओ और नेपाल बचाओ' के नारे लगाकर प्रतिदिन

आन्दोलन चलाए जाते हैं, भारतीयों की दुकानें लूट ली जाती हैं। 1950 में भारत नेपाल के बीच समझौता हुआ था कि दोनों देश, एक दूसरे देश के नागरिकों के साथ अपना-सा व्यवहार करेंगे, तथापि इस अनुबन्ध का पालन नहीं किया जाता और सुरक्षा के नाम पर भारतीयों को प्रताड़ित किया जाता है। अभी अक्तूबर 88 में नेपाली नेता भांजे राना के नेतृत्व में बर्दिया जिले में भारतीय मूल के लोगों की दुकानें लूटी गयीं। नवम्बर में पुन: राजापुर में ऐसी ही घटनाएँ हुईं। अप्रैल 88 में भारतीय मूल के मंगलचन्द, मालिक राम आर्य राम गोपाल आदि की यही दुर्दशा की गयी थी। इसी सितम्बर में शहीद दशरथ इन्टर कालेज के छात्रों ने भारतीय मूल के जायसवाल की दुकानें लूट ली थीं। इस सम्बन्ध में श्रीमती सुशीला रोहतगी और श्री अम्मार रिजवी (दोनों उत्तर प्रदेश के मन्त्री) को इन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए ज्ञापन भी दिए। वस्तुस्थिति यह है कि भारतीयों का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए हमारी सरकार को और हम सभी को सार्थक प्रयास करना चाहिए।

महाराणा उदयपुर को पत्र

सदा बलवान् और राजपुरुषों से सताये हुओं की पुकार यदि भोजन पर भी बैठे हों तो भोजन को भी छोड़ के उनकी बात सुननी और यथोचित उसका न्याय करना। ऐसा न होवे कि निर्बल अनाथ लोग बलवान् और राजपुरुषों से पीड़ित होके रूदन करें और उनका अश्रुपात भूमि पर गिरे कि जिससे सर्वनाश हो जावें। और इनकी रक्षा से सब प्रकार की उन्नति अर्थात् शरीरारोग्य, आयुवृद्धि, धन वृद्धि, राज वृद्धि और प्रतापवृद्धि को सदा करते रहिये।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

नारी के प्रति अत्याचार कब रुकेगा

कोई दिन नहीं जाता जब हम नारी के शोषण, उत्पीड़न, बलात्कार की घटनायें समाचारों में न पाते हों। नारी सदा से शोषिता रही है।

कुछ सौ साल पहले की घटना होगी। उस समय बच्ची को जन्म के समय ही गला घोंट कर मार दिया जाता था और माँ तड़प कर रह जाती थी। कुछ बच्चियों को उनके माँ-बाप जिन्दा जमीन में गाड़ देते थे। कुछ बच्चियों को दरिया में फेंक दिया जाता था। प्रश्न उठता है कि क्या ये बातें बीते युग की हैं? नहीं, यह सब कुछ तो आज भी हो रहा है। पिछले दिनों यह बात समाचार पत्रों की सुर्खियों में थी कि राजस्थान के किन्हीं विधायक के घर में लड़कियों को जन्म लेते ही मार दिया गया। आज विज्ञान का युग है। सम्भवत: स्त्रियों पर आत्याचार का तरीका भी वैज्ञानिक हो गया है। पहले आपरेशन चीरफाड़ करके होते थे आज लेसर किरणों से होते हैं, उसी प्रकार पहले बच्चियों के मारने का ढंग कुछ क्रूर था, आज यह भी संभ्रात हो गया है। आज शहरों में सब जगह गर्भ-परीक्षण केन्द्र खुल गये हैं। वहाँ पर गर्भ में ही लिंग का परीक्षण किया जाता है और कन्याओं की भ्रूण अवस्था में ही हत्या कर दी जाती है। वास्तव में भ्रूण हत्या नारी के उत्पीड़न का एक नवीनतम वैज्ञानिक तरीका है।

कहने को तो आर्यसमाज ने इस प्रकार के परीक्षणों के विरुद्ध आवाज उठाई है, पर सफलता कितनी मिली? जैसी सफलता नारी शोषण के अन्य तरीकों को रोकने में मिली है, उतनी ही यहाँ भी मिली है। आर्यसमाज ने एक काम अवश्य किया है और वह है नारी को अपने पैरों पर खड़े होने में सहयोग, देने का। नारी शिक्षा के लिए, स्त्री जाति के प्रशिक्षण के लिए तथा स्त्रियों को पारिवारिक जिम्मेदारियों में सहभागिता के अवसर दिलाने के लिए, आर्यसमाज ने उल्लेखनीय कार्य किया है।

गये कल का पिता बच्चियों का गला क्यों घोंटता था? आज का पिता भ्रूण-हत्या क्यों कराता है? ये प्रश्न हमारे सामने मुँह बाये खड़े हैं। इसका सबसे बड़ा कारण दहेज समस्या है। कानपुर में तीन पढ़ी-लिखी लड़कियों ने आत्महत्या कर ली। पालघाट केरल में चार बहनों ने सामूहिक आत्महत्या कर ली। हाल ही में उड़ीसा के जैनपुर कस्बें में अविवाहित बहनों की सामूहिक हत्या की खबर मिली है।

फरवरी में कानपुर की घटना ने सभी का दिल दहला दिया था। उस समय यह सोचा था कि शायद ये लड़कियां आतमघाती अति भावुकता की शिकार हो गयीं और आगे ऐसा नहीं होगा, पर यह त्रासद स्थिति ऐसी भयावह होती जा रही है, यह सोचकर भी कंपकंपी आती है कि कहीं यह प्रवृत्ति और अधिक न बढ़ जाए। आखिर ऐसे परिवारों की कमी नहीं है जहाँ पर दहेज का दबाव पड़ता है और इस आर्थिक विषमता के युग में यह दबाव घटने वाला प्रतीत नहीं होता। मंहगाई दिन-दूनी रात-

चौगुनी तरक्की कर रहा है। भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। संयम और शील बीते दिनों की बातें हो रही हैं। नैतिकता की बात करने वाले बुर्जुआ और पिछड़े कहलाने लगे हैं। उन्हें प्रगतिशील नहीं माना जाता।

पुराने युग की बहू की मांगलिक सत्ता समाप्त हो गयी है। पहले गृहिणी को गृहलक्ष्मी माना जाता था, आज वह मात्र भोग्या है अथवा एक कमाऊ मशीन। परिवारों के सम्बन्धों में आई दरार को वैवाहिक सम्बन्धों से पाट दिया जाता था। पर आज परिवार और विवाह की संस्थाओं की पवित्रता ही नष्ट हो रही है। तलाक का सरलीकरण इस स्थिति को और भी दयनीय बना रहा है। दहेज की नंगी लूट-खसोट पर लगाम लगाना कठिन हो गया है। इसे कानूनी नियन्त्रणों से रोक पाना कठिन होता जा रहा है। यदि इसे रोका जा सकता है तो मात्र आपसी समझ, नैतिक मूल्यों और सचेत सामाजिक दबाव के द्वारा ही रोका जा सकता है और यह सामाजिक दबाव पैदा करना आर्यसमाज का दायित्व है।

(आर्य सन्देश, 15-1-89)

जो जितना अपराध करे उसी को उतना दण्ड और जो जितना अच्छा काम करे उसको उतना ही पारितोषिक देना, अधिक वा न्यून नहीं, चाहे माता पिता भी क्यों न हों।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

क्या भगत जी वास्तव में नींद में हैं !

पिछले दिनों भारत के संसदीय मामलों तथा सूचना प्रसारण मन्त्री तथा दिल्ली के भाग्यविधाताओं में प्रमुख व्यक्तित्व श्री हरिकृष्ण लाल जी भगत की नींद के सम्बन्ध में दैनिक समाचार पत्रों ने बहुत चुटकुले-बाजियां जन-साधारण तक पहुंचायीं। साधारण जन के अनुसार हमें भी इन अटकल-बाजियों पर विश्वास नहीं आया, क्योंकि उनका सुपरिचित चेहरा प्रतिदिन दूरदर्शन के सभी समाचार-प्रसारणों में कई-कई बार मुस्कराता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस सबके बावजूद पिछले दिनों कुछ ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जिनसे सचमुच लगने लगा है कि श्री भगत सचमुच ही कुम्भकरणी नींद में सो गये हैं। कारण, उनका मन्त्रालय या तो उनके नियन्त्रण के बाहर हो गया है, अथवा वह भी नींद में है।

दूरदर्शन दिल्ली चैनल-2 में अधिकांश समाचार दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रों से सम्बन्धित होने चाहिए, तथा चैनल-1 पर राष्ट्रीय स्तर के समाचार होने चाहिए। परन्तु यह सब केवल दूरदर्शन के अधिकारियों के विवेक पर निर्भर है कि वे किस समाचार को दूरदर्शन के चैनल-1 अथवा चैनल-2 या फिर किसी भी लायक न समझें। वे लोग, जिन्होंने पब्लिक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की है, जहां उन्हें केवल विदेशी साहित्य और संस्कृति पढ़ाई गई, वहां की चकाचौंध से ग्रसित ये पाश्चात्य सभ्यता के हामी, जिन्हें भारतीय इतिहास और संस्कृति का पता हो नहीं, भारत के करोड़ों जन मानस की भावनाओं से खेलने के लिए निरंकुश छोड़ दिए गए हैं। दिल्ली तथा निकटवर्ती क्षेत्रों की घटनाओं, दुर्घटनाओं, हत्याओं, बलात्कारों और चोरी-डकैतियों से दैनिक राष्ट्रीय अखबारों के पन्ने भरे होते हैं। प्राय: प्रतिदिन देशभर में एक-आधा राजनैतिक हत्या भी होती रहती है। इस सम्बन्ध में पंजाब सबसे आगे है। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि पिछले दिनों एक मासूम तथा सुप्रसिद्ध कलाकर्मी की साहिबाबाद में उसके एक अन्य साथी के साथ हत्या हुई। यह हत्या राजनैतिक थी अथवा नहीं, यह प्रशासन देख रहा है, परन्तु आश्चर्य है कि दूरदर्शन प्रतिदिन सभी प्रसारणों में उसका पूरा उल्लेख कर पता नहीं क्या कहना चाहता है ? क्या दूरदर्शन साम्प्रदायिक दंगे अथवा राजनैतिक दंगे करवा कर दिल्ली की शांति भंग करना चाह रहा है ? पंजाब में आये दिन किसी न किसी राजनैतिक अथवा धार्मिक नेता की हत्या हो जाती है परन्तु दूरदर्शन केवल एक दिन उनका नाम लेकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर लेता है।

पिछले दिनों दिल्ली के प्रबुद्ध नागरिकों को यह देख कर भारी विस्मय तब हुआ, जब 25 दिसम्बर, 1988 को अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द की शहादत की स्मृति में आयोजित एक पांच किलोमीटर लम्बा भव्य जलूस जो दिल्ली के ऐतिहासिक

बाजारों से होता हुआ गुजरा, जिसमें दिल्ली की 300 आर्य समाजों, 100 स्कूल व गुरुकुलों तथा दिल्ली से बाहर के लगभग 100 स्कूलों तथा आर्य संस्थाओं के अधिकारियों, स्त्री, पुरुषों तथा बच्चों ने भारी वर्षा के वावजूद कदम से कदम मिलाकर जलूस में भाग लिया तथा दिल्ली की जनता, जिसमें सभी धर्मों तथा वर्गों के लोग थे, ने भी भारी उत्साह के साथ दिल खोलकर स्वागत किया और राष्ट्रीय एकता भारतीय स्वतन्त्रता, सर्व धर्म समभाव के लिए समर्पित उस महान् संन्यासी के प्रति अपनी श्रद्धान्जलि अर्पित की। परन्तु श्री भगत के मंत्रालय की कुम्भकर्णी नींद नहीं खुली, शायद वह ईसा मसीह के जन्मदिवस की खुशी में कुछ अधिक पी गया और उसे यह ध्यान ही नहीं रहा कि यह दूरदर्शन हिन्दुस्तान का है, इंगलिस्तान का नहीं।

हमारे कार्यालय में दिल्ली से ही नहीं देश के कोने-कोने से हजारों पत्र, टेलीफून और तार आ चुके हैं, यह पूछने के लिए कि हम हिन्दुस्तान के नागरिक हैं अथवा किसी अन्य देश के, जो दूरदर्शन पर भारतीय संस्कृति और भारतीयता के लिए समर्पित जीवनों को छोड़कर अधिकांश समय पाश्चात्य संस्कृति और विदेशियों की सूचनाएं ही दी जाती हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द, जो अपने समय में विश्ववंद्य बापू (महात्मा गांधी), मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, तिलक, गोखले आदि नेताओं के लिए प्रेरणा पुञ्ज रहे हैं, वर्तमान कांग्रेसी सरकार के लिए शायद कुछ नहीं हैं। दिल्ली के चांदनी चौक में गोरी सरकार के सैनिकों के सामने छाती खोलने वाले, शिक्षा जगत् में क्रान्ति मचा देने वाले, मुसलमान भाइयों को पवित्र जामा मस्जिद पर खड़े होकर एकता का पाठ पढ़ाने वाले, सिखों के हितों को रक्षार्थ अमृतसर में सत्याग्रहियों का नेतृत्व करने वाले, महान् देशभक्त स्वामी श्रद्धानन्द को सरकार की कृपा की आवश्यकता नहीं है। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या हम उन देशभक्तों, जिनके त्याग और रक्त से सिंचित यह स्वतन्त्रता हमें मिली, उन की देशभक्ति को भूल जायें और सरकार की "भारतीय को भूल जाने" की नीति का अवलम्बन करें ? देश के जागरूक नेताओं और नागरिकों को इस पर विचार करना होगा।

(आर्य सन्देश, 22-1-89)

जब बुरे बुराई नहीं छोड़ते, तो भले भलाई क्यों छोड़ें।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य की परिकल्पना की है। उन्होंने मनुस्मृति के श्लोक को व्याख्यायित करते हुए लिखा है—और वे सब राजसभा, महाराज सभा अर्थात् सार्वभौम चक्रवर्ती महाराज सभा में सब भूगोल का वर्तमान जताया करें। इस परिकल्पना से यह स्पष्ट है कि स्वामी जी महाराज की दृष्टि संकुचित न थी। वे विश्वबन्धुत्व, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को सब स्थानों तक पहुंचाना चाहते थे। उनका ध्येय किसी भी दिशा में देख लीजिए, महान् था और इसका कारण है कि उनका मस्तिष्क एवं चिन्तन किसी भी प्रकार की लालसाओं से परे था। उनका जीवन लालसानिष्ठ न होकर, ध्येयनिष्ठ था। वेदों में किसी स्थान-विशेष या व्यक्तिविशेष के लिए कुछ भी नहीं कहा गया है। वहाँ मानवमात्र और प्राणीमात्र के लिए व्यवस्थायें दी गई हैं। इसलिए महर्षि ने 'वेदों की ओर, लौट चलने का आह्वान किया। सच्ची शान्ति की स्थापना इन्हीं आदेशों के आधार पर जीवनयापन करने से हो सकती है।

यू० एन० ओ०, यूनेस्को, सार्क, कामनवेल्थ जैसे संगठनों की स्थापना बहुत बाद में हुई परन्तु इनके बीजबिन्दु भारतीय दर्शन में और धर्मशास्त्रों में उपलब्ध हैं। ये मनु महाराज की व्याख्या में उपलब्ध हैं, परन्तु आवश्यकता तो इनके सही आकलन की है और यही कार्य युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने किया था।

पिछले दिनों दिल्ली में 'विश्व नागरिक बनाने की ओर' विषय पर सेमिनार हुआ। मैं इस विस्तार में नहीं जाना चाहता कि इसके आयोजकों का उद्देश्य क्या था, पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस विषय पर विचारणा आज की आवश्यकता है। इस अवसर पर भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने बड़ी ही धर्मसम्मत बातें कहीं। उन्होंने कहा कि ऐसी व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए जिससे 'विश्व नागरिक' बन सकें। उन्होंने कहा कि दुनिया की मौजूदा व्यवस्थाएँ विश्व नागरिक बनाने में नाकाम रही हैं। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे एटमी शक्ति वाला कोई भी देश विश्व नागरिकों पर, विश्व नागरिकों के लिए हथियार इस्तेमाल कर सकें। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय दर्शन विश्वबन्धुत्व की कामना हथियारों के बल पर नहीं स्नेह, सौहार्द और परस्पर सहिष्णुता के आधार पर करने का इच्छुक है। यदि कहीं पर अत्याचार हो रहा हो केवल तभी बल का प्रयोग किया जाए।

श्री गांधी ने कहा है कि भारतीय सभ्यता की ऊँची परम्परा रही है। हमारा मकसद सदा ही मानव कल्याण का रहा है। अन्य सभ्यताओं में भी समय-समय पर

दार्शनिक आन्दोलन होते रहे हैं। इन आन्दोलनों ने अन्धकार और संहार करने वाली शक्तियों को खत्म किया है। शंकराचार्य, गौतम बुद्ध, महावीर जैन, गुरु नानक, राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, अरविन्द घोष, रवीन्द्र नाथ टैगोर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और गांधी इसी धारा के व्यक्ति रहे हैं। ये सभी लोग मानवता के कल्याण की बात को सर्वोपरि मानते थे।

वेद का आदेश है—'मनुर्भव'। इसके अन्तर्गत सभी कुछ समाहित है। वेद का यह आदेश हमें इन्सानियत की बात सिखाता है और इन्सान बनना आसान नहीं है। सभ्यता के उदय के साथ कबीले, गांव, राज्य, साम्राज्य, संघ, विश्वसंघ की परिकल्पनाएँ समय-समय पर हमारे सामने आई हैं। श्री गांधी ने कहा कि कई प्रकार की विविधताओं के बावजूद भी मानव लगातार बड़े समूह बनाता रहा है। उन्होंने कहा है कि इस शताब्दी में कई क्षेत्रीय देशों के संगठन बनाना इसी दशा में एक सही कदम है। हमें उम्मीद रखनी चाहिए कि इस क्रम में चलते एक दिन पूरी धरती पर एकता और समानता की भावना आएगी और हम सच्चे भूनागरिक हो सकेंगे।

उपर्युक्त सारी बात का विवरण देने के पीछे हमारा एक ही उद्देश्य है कि हम सब लोग मिलकर वेद के आदेश का पालन करते हुए अपनी विचारणा को विशाल आयाम दें और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को आधार बनाकर विश्व नागरिकता को स्वीकार करें। संसार में कहीं भी किसी के प्रति अन्याय हो तो हम उनकी सहायता के लिए उठ खड़े हों। पिछले अंकों में नेपाली फिजी, मोरिशस,, सूरीनाम दक्षिण अफ्रीका में भेदभाव के जो मामले सामने आए थे, उनके प्रति भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया था। आओ हम सब प्राणीमात्र के कल्याण के लिए समर्पित हों।

(आर्य सन्देश—29-1-89)

जब पति और पत्नी समक्ष हों, प्रसन्नता पूर्वक नमस्ते कर जिस-जिस प्रकार दोनों में प्रेम बढ़े, वैसा व्यवहार करें, विरुद्ध कभी नहीं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

भारतीयों की अंग्रेजी परस्ती : एक त्रासदी

पिछले दिनों हमारे देश में अंग्रेज कवि स्टीफैन स्वेण्डर आए थे। वे सदा भारतीय अंग्रेजी को घटिया अंग्रेजी कहा करते थे। इस बार उन्होंने ऐसा नहीं कहा; यह हमारे लिए आश्चर्य की बात हो सकती है, पर अगला ही वाक्य उन्होंने जो कहा वह हमारे रोंगटे खड़े कर देने वाला था— 'हिन्दुस्तानियों की अंग्रेज परस्ती, वह प्रेम-प्रसंग है जो न चल पाता है, न तलाक ले पाता है, बल्कि घुट-घुट कर सिसकता रहता है।'' यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि हिन्दुस्तानी लोग आंग्लभाषी बिरादरी में दूसरे दर्जे के नागरिक माने जाएगे। इन पंक्तियों में हमें कारुणिकता खोजने की आवश्यकता नही है। यह हमारे स्वाभिमान पर करारी चोट है।

फिर भी हम अंग्रेजी के दीवाने हैं। हम उस अंग्रेजी के दीवाने हैं, जो भारतीय भाषाओं के बीच दरार पैदा करके अपना स्थान बनाती आई हैं। विनोबा भावे ने कहा था कि हिन्दुस्तानी को दूसरी हिन्दुस्तानी भाषाएँ सीखने में उतना समय नहीं लगेगा जितना अकेले अधकचरी अंग्रेजी सीखने में बरबाद हो जाएगा। हम दूसरी भाषाएँ सीखने की कोशिश नहीं करते और बेकार ही अंग्रेजी को सम्पूर्ण भाषा बनाए रखनें के चक्कर में समय बरबाद किए जा रहे हैं।

संघ लोक सेवा आयोग के सामने आत्मविश्वासी और दृढ़ विचारणा वाले युवकों का एक वर्ग इस बात को लेकर धरने पर बैठा है कि चयन परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया जाए, परन्तु उन्हें प्रोत्साहन देने या उनकी बात मान लेने की बजाय उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। पुष्पेन्द्र चौहान, शिवचन्द्र तिवारी और हीरालाल को 14 जनवरी को दूसरी बार गिरफ्तार किया।

हमें चाहिए यह कि अंग्रेजी के कलंक को अपने माथे से धो दें। यह गुलामी का प्रतीक है। पर हम इसे तिलक समझ बैठे हैं। यह हालत कब तक चलती रहेगी ? हमारे एक साथी ने बताया कि यह तब तक चलेगा जब तक अंग्रेजी जानने वालों को पढ़ा-लिखा माना जाएगा, जब तक हम यह भ्रम पाले रहेगे कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता और जब तक हम अंग्रेजी को अपने काम-काज की भाषा बनाए रखेंगे।

हम यह नहीं कहते कि अंग्रेजी को देश से निकाल दें, पर त्रासदी तो यह है कि हम अंग्रेजी से चिपट रहे हैं।

अभी 24 जनवरी को अंग्रेजी के विरोध में एक विशाल जुलूस निकाला गया। इसका नेतृत्व अनेक भारतीय भाषाओं की समुन्नति के लिए प्रयत्नशील संस्थाओं के नेताओं ने किया। मुख्य मुद्दा यह था कि राष्ट्रपति गणतन्त्र दिवस के अवसर पर दिया

जाने वाला अपना संदेश भारतीय भाषा में रखें पर इसका कोई खास असर नहीं पड़ा।

बात यह नहीं है कि नेता लोग अंग्रेजी के खिलाफ सत्याग्रह कर रहे लोगों की भावनाओं के खिलाफ हैं। डा० शंकरदयाल शर्मा, डा० बलराम जाखड़, श्रीमती नजमा हेपतुल्ला, श्री ललितेश्वर प्रसाद शाही, इन सभी की सत्याग्रहियों के साथ सहमति है, पर फिर भी अंग्रेजी की गांठ ढीली नहीं हो पा रही है।

18 जनवरी 1968 को संसद में यह संकल्प स्वीकृत हुआ था कि भारतीय भाषाओं को ही परीक्षा का माध्यम बनाया जाएगा, पर अभी तक भी हम इसे क्रियान्वित नहीं कर पाये हैं।

अंग्रेजी एक जादूगरनी है। इससे सभी भाषाएं डरती हैं। यह राजरानी है और भारतीय भाषायें नौकरानी हैं। अंग्रेजी की एक दहशत है। हमने बचपन में सुना था कि शेर से क्या डरना, डर तो उसकी दहाड़ का है। वास्तव में अंग्रेजी की यह गिटपिट ही हमारे हृदयों को कम्पायमान किए है।

संघ लोक सेवा आयोग के सामने बैठे सत्याग्रहियों की लड़ाई क्रमिक रूप से अग्रसर है। उन्होंने पहले धरना दिया, भूख हड़ताल की और वे अब जनसम्पर्क कर रहे हैं।

हमें चाहिए कि हम अपनी भाषाओं के लिए जागरूक हों। हम स्वयं अपनी भाषा में व्यवहार करें। अंग्रेजी की दासता को छोड़ें। सभी भारतीय भाषाओं को अपना मानें। संस्कृत इन सभी के बीच एक सेतु का कार्य कर सकती है।

(आर्य सन्देश 5-2-89)

मेरी अन्तकरण से यही कामना है कि भारतवर्ष के एक अन्त से दूसरे अन्त तक आर्यसमाज स्थापित हो, और देश में व्यापी हुई कुरीतियाँ उन्मूलित हो जायें ”

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती : प्रखर राष्ट्रवाद के प्रवक्ता

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्मदिन पिछले कुछ ही वर्षों से मनाना शुरू किया गया है। पहले क्यों नहीं मनाया जाता था, इसका तो पता नहीं। सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य सभा के निर्णयानुसार महर्षि का जन्मदिन 12 फरवरी को पड़ता है। कुछ लोग सम्भवत: इस सम्बन्ध में आश्वस्त नहीं हैं। पर यह बात स्पष्ट है कि सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रचारित और अभिलेखित जन्मदिन 12 फरवरी को है। इस दिन हरियाणा प्रान्त में, और महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक में और संबंधित संस्थाओं में सार्वजनिक अवकाश भी होता है।

हम किसी महापुरुष से सम्बन्धित दिवस समारोह क्यों मनाते हैं ? इसका एक स्पष्ट उत्तर है ताकि हम उन्हें याद कर सकें, उनके द्वारा किए गए कार्यों को आगे बढ़ा सकें तथा अपने व्रत को दुहरा सकें। महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अवगाहन करने वाला व्यक्ति अपने आपको जीवन के किसी भी क्षण में असहाय या असमर्थ महसूस नहीं करता। सत्यार्थप्रकाश में उन सब अवस्थाओं के लिए समाधान मौजूद हैं, जब वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है। एक सामान्य सी बात है कि यदि किसी का नौकरी में रहते निधन हो जाए, तो उसके भरण-पोषण की क्या व्यवस्था हो। आप को यह जानकर सुखद अनुभूति होगी कि इस विषय का विवेचन और प्रतिपादन भी सत्यार्थ-प्रकाश में प्राप्य है। आज बड़ा शोर मचाया जा रहा है, पर्यावरण का। महर्षि दयानन्द का गोकरुणानिधि पढ़ लीजिए। पिछले दिन विश्वनागरिकता की बात चली। भारतीय दर्शन तो विश्व की एकता के विचारों से ओतप्रोत है—'यत्र विश्वं भवति एकनीडम्', 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्', 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। ये वाक्य विश्व-एकता, विश्व-नागरिकता की भावना का ही प्रतिपादन करते हैं। पुनः सत्यार्थप्रकाश के पन्ने खोलिए। आपको वहाँ पर 'विश्व-राज्य' की परिकल्पना मिलेगी। अद्भुत था वह मनस्वी ऋषि, योद्धा ऋषि, अजेय ऋषि।

महर्षि दयानन्द सरस्वती को हम केवल धार्मिक और सांस्कृतिक जागरण तक ही सीमित नहीं कर सकते। उनका राष्ट्रवाद प्रखर था। वे राष्ट्रवाद के पुरोधा थे। 'स्वराज्य' शब्द देने वाले वे ही पहले व्यक्ति थे। महर्षि ने अपने ग्रन्थों में गौरवपूर्ण अतीत की व्याख्या सोद्देश्य की थी। वे चाहते थे, इस देश में कृष्ण जैसे महाबली होते। वास्तव में वे इस देशवासियों के अन्तस्थल में क्रान्ति का संचार करना चाहते थे। उन्हीं के द्वारा प्रदत्त नवचेतना के परिणामस्वरूप, उस समय चारों ओर जागृति की लहर व्याप्त थी। उन्हीं के आह्वान पर चारों ओर से धार्मिक एवं सांस्कृतिक घुसपैठ

का विरोध शुरू हुआ था। सभी ने मिलकर अराष्ट्रीयता के विरुद्ध घोर संघर्ष का महाभियान छेड़ा था।

उस समय स्वराज्य की बात करना, मृत्यु को निमन्त्रण देना था। परन्तु महर्षि का उद्घोष था—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह-रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" महारानी को विज्ञप्ति कीं खण्डन करने वाला दयानन्द ही था। हेनरी केम्पबैल से उसने साफ कहा था—सुराज्य, स्वराज्य का स्थानापन्न नहीं हो सकता।

महर्षि दयानन्द के चिन्तन प्रखर राष्ट्रीयता के द्योतक हैं। ये शब्द राजनीति शास्त्र में महर्षि दयानन्द के नाम से नहीं, बल्कि ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ जॉन स्टुआर्ट मिल के नाम से पढ़ाये जाते हैं, जबकि इन शब्दों के आदि प्रणेता वही थे।

श्रीमती एनी बेसेन्ट ने उन्हें 'भारतीयों के लिए स्वतन्त्रता का प्रथम उद्घोषक,' लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने उन्हें 'स्वधीनता का प्रथम संदेशवाहक' और रोम्या रोलां ने उन्हें 'पुनर्जागरण का अग्रदूत' माना था।

महर्षि दयानन्द का स्मरण करते हुए, भारत के राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि हमारे संविधान की प्रेरणा हमें उन्हीं के ग्रंथों से मिली थी। हमारा कर्त्तव्य है कि इस राष्ट्रीय भावना को अक्षुण्ण बनाए रखें।

(आर्य सन्देश—12-2-89)

जो प्रीति पूर्वक धर्मात्मता से तीस वर्ष तक राज कार्य करे, उनको आधी नौकरी जब तक वे जीवें, देवें। यदि संग्रामदि जिसका मृत्यु हुआ हो, उसकी स्त्री पुत्रों को भी उसी प्रकार देवें। यावत् उनके पुत्रों को भी उसी प्रकार देवे। यावत् उनके पुत्र समर्थ न हों। जब समर्थ हों, तब उनके पुत्रों को यथायोग्य अधिकार देवें। परन्तु उसकी स्त्री को योगक्षेमार्थ यथोचित् जब तब वह जिये सदा दिया करे। यदि वह पांच रुपये पाता हो तो पूरा देवें। पुत्रों के समर्थ होने पर स्त्री को आधा देवें।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जन्मदिवस 22 फरवरी को है। इस दिन दिल्ली में अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर आयोजन किये जाते हैं। दिल्ली नगर निगम के कार्यालय के सामने घण्टाघर चौक पर भी यह आयोजन किया जाता है जिसमें दिल्ली नगर निगम के महापौर तथा अन्य अधिकारी भी सम्मिलित होते हैं। आर्यसमाज के मूर्धन्य नेता भी इस समारोह में दिल्ली की जनता को सम्बोधित करते हैं। यह वही स्थान है जहाँ पर 30 मार्च 1919 को स्वामी श्रद्धानन्द ने अंग्रेज सिपाहियों की संगीनों के सामने छाती खोलकर कहा था—'मारो' और चारों ओर सन्नाटा छा गया था। फौजों को पीछे हटना पड़ा था। रौलट एक्ट के विरोध में हो रही जनसभा की अध्यक्षता स्वामी श्रद्धानन्द ने की थी। उस समय की हिन्दू और मुसलमानों की अपार भीड़ स्वामी जी महाराज के साथ थी। स्वामी जी महाराज ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, और मानसिक क्रान्ति को नेतृत्व प्रदान किया था।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने 4 अप्रैल 1989 को जामा मस्जिद से दिल्ली के लोगों को सम्बोधित किया था। वेद मन्त्रों से वह स्थान गुंजायमान था। साम्प्रदायिक सद्भाव का वह अनोखा वातावरण था। आज भी यह घटना बहुत अधिक प्रासंगिक है। इस अंक में हमने स्वामी जी महाराज के सम्बन्ध में सामग्री देने का प्रयास किया है। उनका व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व इतना महान् है कि उसको इन पन्नों में समेट पाना कठिन है। इस अवसर पर आर्यसन्देश की ओर से विनत श्रद्धांजलि।

(आर्य सन्देश 19-2-89)

अपने अंश को न छोड़े और पराये अंश को कभी स्वीकार न करे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

दिल्ली में आर्यसमाज

आर्य समाज दीवान हाल का वार्षिकोत्सव 24, 25, 26 फरवरी 1989 को आयोजित किया गया है। यह आर्यसमाज विश्वभर की प्रमुख आर्यसमाजों में से है तथा अनेक आन्दोलनों का केन्द्र भी यही आर्यसमाज रही है। इसके वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिल्ली के आयजनों का कर्त्तव्य है कि वे आर्यसमाज के विगत इतिहास पर दृष्टि-पात करें, अपनी उपलब्धियों पर गौरवान्वित हों तथा असफलताओं का विश्लेषण करें। आर्यसमाज की स्थापना को 114 वर्ष बीत चले हैं। संस्थाओं के इतिहास में यह कोई बहुत लम्बी अवधि नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि जो संस्थाएं तथा आन्दोलन इतने समय तक चलते हैं, उनके गौरव चिह्न चिरस्थायी महत्त्व के होते हैं तथा ऐसी संस्थाएँ दूरगामी कार्यक्रमों को लेकर चलने वाली होती हैं।

आर्यसमाज ने सर्वप्रथम स्वराज्य का नारा दिया। आर्यसमाज ने अछूतों, दलितों, अभावग्रस्तों, महिलाओं का उद्धार किया। आर्यसमाज ने पुनर्जागरण का कार्य किया। आर्य समाज ने धर्म, दर्शन, समाज, राज्य, अर्थ तथा शिक्षा सम्बन्धी उन मान्यताओं को प्रचारित प्रसारित किया जो सार्वभौम हैं, जो प्राणीमात्र के लिए हैं, जिनमें मानवीयता का गुण प्रबल है। और यही कारण है कि आर्यसमाज का आन्दोलन सुदृढ़ आधारभित्ति पर स्थित है। ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज तथा देवसमाज आदि का कार्य-क्षेत्र सीमित था, इसलिए उनका प्रभाव समाप्त हो गया है या हो रहा है। आर्यसमाज कुरीतियों के उन्मूलन तथा निर्माण का पक्षधर है, अन्धविश्वास पाखण्ड तथा जाति-पाँति के बन्धनों को तोड़ने का पक्षधर है, समता और स्वदेशी का प्रवर्त्तक है इसलिए यह आन्दोलन स्थायी महत्त्व का है।

महर्षि दयानन्द सरस्वतीने आर्यसमाज की स्थापना 1875 में की थी। अपने जीवनकाल में उन्होंने अनेक आर्यसमाजों की स्थापना की थी। 'आर्यसमाज देहली' की स्थापना भी उन्होंने नवम्बर 1978 के पहले सप्ताह में स्वयं की थी। आर्यसमाज दीवान हाल के नाम से विख्यात यह आर्यसमाज अनेक स्थानों पर संचालित होती रही है। इसके पहले प्रधान लाला मक्खनलाल और मन्त्री लाला हुकूमत राय थे। स्वामी जी द्वारा स्थापित इस आर्यसमाज की पुष्टि स्वामी जी महाराज द्वारा 3 नवम्बर 1878 को श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखे पत्र से भी होती है।

आज दिल्ली में लगभग 300 आर्यसमाजें हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम संग-ठित होकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए निष्ठा और लगन से कार्य करें। हमारे सामने अनेक समस्याएं हैं जिनका निदान सम्भवतः आर्यसमाज ही कर सकता है। देवयाणी संस्कृत की रक्षा, देश की अखण्डता की रक्षा, कर्मकाण्ड और विधि-

विधान की रक्षा अपने देशवासियों को विधर्मियों के चंगुल से रक्षा, अन्य देशों में प्रवासी भारतीयों के अधिकारों की रक्षा और सबसे ऊपर अपने संगठन की विघटनकारी तत्त्वों से रक्षा आदि महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि सभी आर्यजन मिलकर इन सब समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगें।

(आर्य सन्देश—26-2-89)

हारे हुए शत्रु की प्रतिष्ठा कभी न करे किन्तु उसका यथायोग्य मान्य रक्खे। परन्तु उसको छोड़कर स्वतंत्रता कदाचित् न देवे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानंद

महर्षि दयानन्द सरस्वती को वोध शिवरात्रि के अवसर पर हुआ था। शिवरात्रि पर आर्यसन्देश का का यह ऋषि बोधांक पाठकों के हाथों में हैं। इसके माध्यम से आर्य जनता के सम्मुख, महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से सम्बन्धित विद्वानों के कुछ लेख प्रस्तुत किए गए हैं।

संसार में महापुरुष वे माने जाते हैं, जो अपने युग की परिस्थितियों के आधार पर विश्व को नया सन्देश देते हैं, अथवा सोई जनता को उनके पूर्वजों के महत्कर्मों का स्मरण दिलाते हैं, अथवा कुछ नये आविष्कार करते हैं। ऐसे ही महापुरुषों में राम, कृष्ण, महावीर, गौतमबुद्ध, मोहम्मद पैगम्बर, ईसा मसीह, महात्मा गांधी, राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द, महर्षि अरविन्द, कार्ल मार्क्स और न्यूटन आदि के नाम उल्लेखनीय है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती इन सबसे भिन्न इस अर्थ में हैं कि उन्होंने इस युग को कोई नया सन्देश अथवा आदेश नहीं दिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा था कि मैंने संसार के सामने केवल उन्हीं बातों को रखा है जिनको ब्रह्मा से लेकर जैमनी पर्यन्त ऋषि मुनि मानते आए हैं। संसार में कोई छोटा सा भी काम कर देता है, तो वह यह कहते नहीं अघाता कि यह कार्य मैंने किया है, परन्तु यह उस ऋषि की महानता थी जिसने संसार का उपकार करने का सन्देश देने के बावजूद भी यही कहा कि मैं कोई नई बात कहने नहीं आया हुँ। महर्षि ने अपने व्यक्तित्व को महान् कार्यों से सर्वथा पृथक् रखा है। संसार में ऐसे अनेक लोग मिल जायेंगे जिन्होंने अपने आपको पुत्र कामना से अलग रखा हो, ऐसे भी मिल जायेंगे जिन्होंने धन की लिप्सा न रखी हो। ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगें जिन्होंने पुत्र और धन दोनों की कामना पर विजय पा ली हो। पर संसार में ऐसे कोई न मिलेंगे जिन्होंने यश की कामना अर्थात् प्रसिद्धि की कामना पर भी विजय प्राप्त कर ली हो। संसार मे ऐसे लोग मिलते हैं, जो बिना काम किए ही फोटो खिचवाते हैं, अखबार में नाम छपवाते है। उस ऋषि ने इस लालसा पर भी विजय प्राप्त कर ली थी वह महर्षि, उसका व्यक्तित्व और कर्तृत्व वन्दनीय है। उसने इन तीनों कामनाओं पर विजय प्राप्त की थी। साथ ही पूरे देश में घूम-घूम कर सत्यधर्म का प्रचार-प्रसार करने में, उसने अपने रक्त की एक-एक बूंद तक सर्पित कर दी। उसके मन में संसार के उपकार की भावना सर्वोपरि थी। संसार के अनेक मतमतांतरों का उदाहरण आपके सामने है। धर्म वही फैलता है जिसका प्रचार प्रसार करने वाले गली-गली, कूचे-कूचे में घूमते हैं। बौद्ध धर्म दूर-दूर तक फैला क्योंकि इसके अनुयायी दूर-दूर तक गए, यहाँ तक कि राजकुमार और राजकुमारियों ने भी बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर अन्य देशों में जाकर अपने धर्म का

प्रचार किया। ईसाई धर्म के मिशनरी शान्ति भाव से व्यापक रूप में दूर-दूर तक के देशों में जाकर अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करने में संलग्न हैं। यही कारण है कि संसार के अधिकांश देशों में यह धर्म फैला है। मुस्लिम धर्म भी, यह कहा जाता है कि 21 वीं शताब्दी तक विश्व की 23 प्रतिशत जन-संख्या तक फैल जाएगा। यह सब धर्म प्रचारकों के भ्रमण से होता है।

हम आदि शंकराचार्य की बारहवीं शताब्दी मना रहे हैं। आप जरा उसके जीवन पर गौर करके देखिए। केरल के कालड़ी ग्राम में उत्पन्न वह बालक इस देश के उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम सभी भागों तक गया—चारों सुदूर कोनों में शंकराचार्य पीठों की स्थापना की। इसकी एक और विशेषता है कि उत्तर भारत की पीठ पर दाक्षिणत्य पण्डित शंकराचार्य होगा और दक्षिण में उत्तर भारतीय। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की कितनी महान कल्पना उसने की थी।

इसी प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती भी कभी एक स्थान पर नहीं टिके। आर्यसमाज के प्रचार में उनकी घुमन्तू प्रवृत्ति का बहुत बड़ा योगदान था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में स्वयं भी संन्यासियों को घूम-घूम कर वेदप्रचार करने की प्रेरणा दी है।

महर्षि कभी भी सत्य, न्याय एवं दृढ़ता के पथ से विचलित नहीं हुए। उन्होंने कभी भी इस बात की परवाह नहीं की कि कोई क्या कह रहा है। उन्होंने पूरी शक्ति और सामर्थ्य से सदैव सत्य का ही प्रतिपादन किया। उन्हें कोई लोभ न था। उन्हें किसी धन-दौलत की परवाह न थी। वे न्याय पथ पर सदा बढ़ते रहे। उन्हें कांटों का मार्ग ही पसन्द था। अपूर्व धैर्य के धनी थे। उनके जीवन काल में उनके दुश्मन कम न थे; उनको जहर पिलाने वाले लोग थे, उन पर ईंट-पत्थर बरसाने वाले लोग थे, पर उस धुन के पक्के, सच्चे सन्यासी ने कभी अपने चेहरे पर घबराहट न आने दी। उसने कभी धीरज नहीं खोया। आज लोग छोटी-छोटी बातों पर विचलित हो जाते हैं।

पंजाब प्रान्त में सर्वप्रथम और सर्वाधिक आर्य समाज का प्रचार-प्रसार हुआ। इसका मुख्य कारण था कि वहाँ के लोग आतिथ्य प्रिय थे। वे उपदेशकों का सम्मान करते थे। आज भी हमें अपने उपदेशकों का मान-सम्मान तथा आतिथ्य करना चाहिए। उपदेशकों, संन्यासियों को भी एक स्थान पर न ठहर कर, घूम-घूम कर वेद प्रचार में अपना योगदान करना चाहिए।

इस बोध पर्व पर आओ हम उस ऋषि को स्मरण करें जिसने कहा था—'मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। किन्तु इस ग्रंथ में ऐसी बात नहीं रखी है, और न ही किसी का मन दुःखाना अथवा किसी की हानि करना हमारा तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करें क्योंकि

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।'

महर्षि के उद्गार स्पष्ट करते हैं कि उसने मानव-कल्याण के लिए संसार के सामने वही बातें रखीं, जिनकी उन्होंने जीवन भर खोज की। वे संसार को उस मार्ग पर ले जाना चाहते थे जिसमें मानवमात्र का कल्याण निहित हो।

हम महर्षि को सामाजिक क्रांति के प्रणेता के रूप में देखते हैं। विद्वत्ता के क्षेत्र में भी जो कार्य उन्होंने किया उसका स्थान निर्विवाद रूप से सर्वोपरि है। वैदिक वाङ्मय के जिस स्वरूप को जटिल माना जाता है, महर्षि उनके यथार्थवेत्ता थे। संसार के इतिहास में ऐसा दिव्य पुरुष मुश्किल से मिलेगा जो शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक धरातल पर एक साथ समान ओज और तेज को लेकर प्रस्तुत हुआ है।

ऋषि बोधोत्सव पर हम उस ऋषि का स्मरण करते हैं जिसने बाईबिल, कुरान आदि ग्रंथों का सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन किया था, जिसने भारतीय दर्शन पर तो चिन्तन किया ही था, उनकी निर्मिति के इतिहास की खोज पर भी अनुसन्धानात्मक लेखनी चलाई थी, जिसने विभिन्न दर्शनों एवं धर्मशास्त्रों की गहराई में उतरकर उनका बौद्धिक विश्लेषण किया था, जिसने मनुष्य को जीर्ण परम्पराओं तथा रूढ़ियों से मुक्त कराया था। □

(आर्य सन्देश, 5-3-89)

अपराध में प्रजा से राजपुरुषों पर अधिक दण्ड होना चाहिये क्योंकि बकरी के प्रमाद रोकने से सिंह का प्रमाद रोकने में अधिक प्रयत्न होना उचित है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

अमर शहीद पं. लेखराम

जिस सत्य के लिए किसी महापुरुष को अपने प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है, वह सत्य उतना ही व्यापक बन जाता है। यह बात धर्मवीर लेखराम के जीवन से स्पष्ट है। पं० लेखराम के बलिदान ने वैदिक सिद्धान्त की व्यापकता में महान् कार्य किया है। आर्य समाज के लिए जो कार्य धर्मवीर पं० लेखराम के बलिदान के फलस्वरूप हुआ, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा। धर्मवीर पं० लेखराम का बलिदान 6 मार्च 1897 को हुआ था। आओ, इस अवसर पर उस वीर बलिदानी के कर्तृत्व का स्मरण करें तथा उसके द्वारा स्थापित सन्मार्ग पर चलने का व्रत लें।

पं० लेखराम का जन्म ग्राम सैयदपुर जिला जेहलम की चकवाल तहसील में संवत् 1915 में चैत्र शुक्ला 8 को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा उर्दू फारसी में हुई थी। 21 दिसम्बर 1875 ई० को पं० लेखराम पेशावर पुलिस में नौकर हो गए। पं० लेखराम के लिये यह नौकरी करना कठिन था। इसी कारण जैसे-तैसे 5 वर्ष बाद उन्हें यह नौकरी छोड़ देनी पड़ी। पण्डित जी का मन तो सदा ईश्वर भक्ति में लगा रहता था। एक सिख सिपाही नियमपूर्वक पाठ और भजन किया करता था। उसका प्रभाव आपके ऊपर बहुत गहरा पड़ा। उसी समय से लेखराम निरन्तर ईश्वर की उपासना करते रहते थे। आपको गीता स्वाध्याव का बहुत शौक था। परिणामस्वरूप कृष्ण भक्ति में आपकी भारी श्रद्धा हो गई। यहाँ तक कि वैराग्य की भावना भी विकसित हो गई और आपके मन में वृन्दावन जाने की भावना बलवती होने लगी। माता-पिता ने आपका विवाह करना चाहा, परन्तु आपने विवाह न किया और धीरे-धीरे आपका झुकाव वैदिक धर्म की ओरहोने लगा। उस समय ऋषि दयानन्द के कार्यों की धूम मची हुई थी। आपको प्रेरणा हुई और आपने ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को पढ़ा। यह समय आपके जीवन में संक्रमण का समय था। संवत् 1937 में आप ने पेशावर में आर्यसमाज की स्थापना की।

पं० लेखराम महर्षि के दर्शन करने अजमेर पहुँचे। अब तक जिन समस्याओं का वे समाधान न कर सके थे, उनका समाधान महर्षि ने ऐसा किया कि वह वीर लेखराम सदा-सदा के लिए ऋषि का हो गया।

आप जानते थे कि किसी भी धर्म के प्रचार के लिये एक पत्र का होना आवश्यक है, और इसी कारण आप ने पेशावर आर्यसमाज की ओर से 'धर्मोपदेश' नामक मासिक पत्र चलाना प्रारम्भ किया। यह काम बड़े परिश्रम और उत्तरदायित्व का था। आप लेखन के साथ-साथ व्याख्यानों को तैयार करने में बहुत परिश्रम करते थे। व्याखयान और लेखन के अतिरिक्त शास्त्रार्थ में भी आपकी बहुत रुचि थी। एक बार आपका शास्त्रार्थ एक पुलिस इन्स्पैक्टर से भी हुआ था। आपकी दृढ़ इच्छा थी कि सम्पूर्ण विश्व में आर्यसमाज हो और वैदिक धर्म को संसार का शिरोमणि धर्म

समझा जाये। पुलिस की नौकरी जैसा पहले भी लिख चुके हैं, उन्हें रास न आई और 24 दिसम्बर 1884 को आपने त्यागपत्र दे दिया।

लेखराम को पेशावर में ऋषि दयानन्द के दो पत्र मिले थे। एक में गोरक्षा-विषयक प्रार्थनापत्र पर हस्ताक्षर कराने का आदेश था और दूसरे में हिन्दी प्रचार के लिये शिक्षा कमीशन को निवेदन भेजने के सम्बन्ध में था। पं० लेखराम तो उत्साह के पुञ्ज थे, फलस्वरूप ये दोनों कार्य उन्होंने बड़े उत्साह से किए।

पं० लेखराम ने कभी किसी व्यक्ति के वैदिक धर्म पर लगाये आक्षेप को सहन नहीं किया और उनको मुंह तोड़ उत्तर दिया। उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्मों की गलत मान्यताओं का सदा जमकर विरोध किया। ऋषि दयानन्द के निर्वाण के बाद उन्होंने अपनी जिम्मेदारी और भी ज्यादा अनुभव की। और वे रात-दिन आर्यसमाज के काम में जुट गये। उन्होंने बड़े परिश्रम से ऋषि जीवनी लिखी। इसके लिये मनोयोग से सामग्री एकत्रित की। आप ने कुम्भ के मेले पर वैदिक धर्म का प्रचार किया। सिन्ध प्रान्त में तो धर्म की रक्षा के लिये आपने जो कार्य किया उसके वर्णन के लिये तो अनेक पोथें लिखने पड़ेंगे। राजपूताना और काठियावाड़ में, जब वे ऋषि के जीवन-सम्बन्धी सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिये गये, तो वे अपने प्रचार कार्य में भी साथ ही लगे रहे।

आप ने मांस भक्षण का सदैव विरोध किया और प्रबल तर्कों तथा युक्तियों से सिद्ध किया गया कि वेदों में मांस भक्षण का कहीं पर विधान नहीं है।

मालेर कोटले में आप ने जो 1895 में शास्त्रार्थ पुनर्जन्म के सम्बन्ध में किया था, उससे अनेक लोग इतने प्रभावित हुये थे कि वे आप की हर इच्छा पर बलिदान होने को तैयार थे।

पं० लेखराम का जीवन सदाचार और सादगी का जीवन था। आप धार्मिक व्यक्ति थे तथा प्रतिदिन वेद, कुरान, बाइबिल आदि का स्वाध्याय किया करते थे। आप आर्य संस्कृति के महान् संरक्षक थे।

6 मार्च 1897 को एक विश्वासघाती मुसलमान युवक के हाथों आपका बलिदान हुआ। पं० लेखराम आज इस दुनिया में नहीं हैं, पर उन के कार्य आज भी आर्यों में नवजीवन और ऊर्जा का संचार करते है। पं० लेखराम आर्यसमाज के इतिहास में सदा अमर रहेंगे।

(आर्यसन्देश 12-3-89)

सर्वदा सन्तानों की शिक्षा में धन का व्यय करे किन्तु विवाह मृत्यु आदि में न करे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

विधि की विडम्बना

विधि आयोग ने पिछले दिनों अपनी 131 वीं और आखिरी रिपोर्ट में वकीलों के विषय में कुछ सारहीन बातें कही हैं। यह सम्भव है कि रिपोर्ट देने वालों के मन में इसके द्वारा वकीलों का कुछ भला करना रहा हो, अथवा उन्हें सन्मार्ग दिखाना रहा हो, पर इसमें जो चित्र खींचा गया है, उससे वकीलों के बारे में समाज की कोई अच्छी राय नहीं बनती। वैसे यह कोई नयी बात नहीं है। वे भाग्यशाली लोग हैं, जिन्हें डाक्टरों अथवा वकीलों से जीवन में कोई काम न पड़ा हो। फिर भी इस रिपोर्ट के बारे में कुछ बात कही जा सकती है। यह रिपोर्ट भी लगभग वैसी ही है जैसी दूसरी रिपोर्ट हुआ करती हैं, अर्थात् इन रिपोर्टों का स्तर वैसा ही है जैसा सामान्यत: हुआ करता है कि हमें तो कोई ऐतराज नहीं है, पर यदि कोई इस बात को उठा दे तो क्या होगा। हमें इस पर विचार कर लेना चाहिए। क्या विचार करना है, यह कोई नहीं बताता। विधि आयोग ने भी ठीक इसी प्रकार 'न्याय के स्तर को बढ़ाने पर विचार करने की औपचारिकता का निर्वाह मात्र किया है। आयोग ने यह स्वीकार किया है कि न्याय प्रक्रिया को जान बूझकर लम्बा खींचने में वकीलों के निहित स्वार्थ बन गये हैं। वे कोई भी फैसला एक बार में और स्पष्ट नहीं होने देते। यह समस्या इसलिये और ज्यादा गम्भीर है क्योंकि उन्हें कानूनन एकाधिकार मिला हुआ है। न्याय के उपभोक्ताओं के पास कोई विकल्प ही नहीं बचा है। एकाधिकार से जो नुकसान होता है, उसे सभी जानते हैं, फिर भी न्याय और स्वास्थ्य जैसे व्यवसायों पर एकाधिकार के कानून बनाये गये हैं। इन प्रोफेशनों के भी अपने आर्थिक स्वार्थ हैं। न्याय प्रक्रिया को लम्बा खींचना इसी का अंग हैं, जबरदस्ती किसी को भी कोर्ट में घसीटने की प्रेरणा देना भी इसी का अंग है, समाज का झगड़ालू बनाने में भी वकीलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यही मामला डाक्टरों के भी साथ है। उन्होंने भी सारे समाज को बीमार बनाने की ठानी हुई है। जहाँ रोगी एक बार उनके चंगुल में फंसा, फिर वह बाहर नहीं निकल सकता। छोटे-छोटे झगड़ों के लिये हम वकीलों के मुहताज हो गये हैं। जब कोई बड़ा आदमी कहता है कि मैं अपना वक्तव्य अपने वकील से परामर्श के बाद दूंगा, किस बात का परिचायक है? जब कोई नेता अपना कार्यक्रम यह कह कर रद्द करवा देता है कि उसके डाक्टर ने अनुमति नहीं दी। यह भी किस बात का परिचायक है।

वैसे एक बात वकीलों के पक्ष में जाती है। वकील स्वाभाविक नेता होते हैं। वे बहुतों की सहायता करते हैं, इसलिये बहुत सारे लोग उनके पीछे होते हैं। कुछ लोग भले ही उनसे नाराज हों, पर उनके खिलाफ बोलने की हिम्मत नहीं कर पाते। उन्हें वकीलों से सदा भय बना रहता है। क्या यही बात डाक्टरों के लिये भी सही

नहीं है। हर डाक्टर को अपनी प्रशंसा सुनने में खुशी होती है। किसान को फसल देखकर, डाक्टर को मरीज देखकर और वकीलों को मुवक्किल देखकर बड़ी खुशी होती है।

कोई वकील यह नहीं कहता कि वह अपने मुवक्किल को बचा न सकेगा और इसी कारण रोज मुकदमे दर्ज होते हैं। ताजोराते हिन्द तो वकीलों का स्वर्ग है। जो वकीलों का स्वर्ग है वही मुवक्किलों का नर्क है और यह ऐसा ही बना रहेगा, चाहे कितनी ही रिपोर्टें क्यों न आयें।

इसके आसार सुधरने वालें नहीं लगते। इसमें सुधार आ सकता है यदि मुवक्किल छोटी छोटी बातों के लिये अदालतों में न भागें और वे अपनी उन्नति के साथ, दूसरों की उन्नति की भी कामना करें और वे सामाजिक तथा सर्वहितकारी नियमों के पालन में किसी प्रकार की उच्छृंखलता न दिखायें तथा एक दूसरे की भावनाओं का आदर करें, साथ ही बकील लोग भी छुद्र स्वार्थों से ऊपर उठकर केवल सत्यपक्ष का ही समर्थन करें।

(आर्यसन्देश 19-3-89)

अधिष्ठाता लोग राजाज्ञा को अपने प्राण से भी अधिक मानें, चाहे कोई कैसा ही संबन्धी वा मित्र क्यों न हो।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूर्खों से दूर रहें

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
भिनत्ति वाक्यशल्येन अदृष्टः कण्टको यथा ।।

भावार्थ :

मूर्ख से दूर रहना चाहिए, उसे त्याग देना ही उचित है क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप में दो पैरों वाला पशु है। वह वचन रूपी बाणों से मनुष्य को ऐसे ही बींधता है, जैसे अदृष्ट कांटा शरीर में घुसकर शरीर को बींधता रहता हैं ।

—'चाणक्य-नीति'

आजकल कई संगठन विरोधी लोग अनर्गल बातें करते सुनाई देते हैं। उनसे बातचीत करने के बाद भी, यह देखा गया है कि वे सही रास्ते पर आने के लिए तैयार नहीं हैं। वे निरन्तर कोई-न-कोई अनुचित एवं अवांछित बात कहकर, कार्यकर्त्ताओं के उत्साह को क्षीण करते हैं, तथा उनका मनोबल गिराते हैं। आर्यजनों से विनम्र अनुरोध है कि वे ऐसे लोगों की बातों की कोई परवाह न करें।

(आर्य सन्देश —26-3-89)

राज्य का कार्य एक पर निर्भर न रक्खे। किन्तु राजपुरुष की अनुमति के अनुकूल प्रचलित करे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

डा. सत्यकेतु विद्यालंकार

आर्यसमाज के प्रसिद्ध इतिहासकार, विख्यात साहित्यकार, वैदिक विद्वान् और मनीषी डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार का 16 मार्च वृहस्पति वार को सड़क-दुर्घटना में निधन हो गया। वे 86 वर्ष के थे। इस अवस्था में भी उनकी कार्य-कुशलता एवं मनोबल श्लाधनीय था।

डॉ० सत्यकेतु चिरकाल तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर रहे। उनके जीवन का अधिकांश समय साहित्य सृजन में बीता। उनके द्वारा लिखित अब तक 45 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनकी पृष्ठ संख्या 25 हजार के लगभग है। 1929 में हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के द्वारा उन्हें "मंगला प्रसाद पारितोषिक" प्रदान किया गया था। विभिन्न राज्य सरकारों तथा बंगाल हिन्दी मण्डल कलकत्ता और नागरी प्रचारिणी सभा आदि अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने "पण्डित मोतीलाल नेहरू पुरस्कार", व "पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त पुरस्कार" आदि अनेक पुरस्कार उन्हें प्रदान किये।

इतिहास और राजनीति शास्त्र के अनेक उच्चकोटि के अनेक मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने कतिपय साहित्यिक उपन्यासों की भी रचना की, जिन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में बहुत सम्मान प्राप्त किया। ऐतिहासिक उपन्यास "आचार्य चाणक्य" के द्वारा उन्हें काफी लोकप्रियता मिली।

1962 में वह रूहेलखण्ड स्नातक निर्वाचन क्षेत्र से उत्तर प्रदेश विधान परिषद के सदस्य चुने गये थे। डा० विद्यालंकार ने अनेक विदेश यात्राएं कीं जिनमें हैं—इटली, स्विटजरलैण्ड, बेल्जियम, ग्रेट ब्रिटेन, चीन, केनिया आदि। फ्रांस में भी वे 2 वर्ष तक रहे।

डा० सत्यकेतु रशियन भाषा के भी विद्वान् थे। वे रूस में गये थे जहाँ पर उनके द्वारा लिखी लघु पुस्तिका रशियन भाषा में प्रकाशित हुई। यह लघु पुस्तिका, "स्वामी दयानन्द का संक्षिप्त जीवन चरित" था।

उनका जन्म 19 सितम्बर 1903 को ग्राम आलमपुर, पोस्ट रामपुर, जि० सहारनपुर, उ० प्र० में हुआ था। स्वामी श्रद्धानन्द के काल में गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थी रहे। गुरुकुल के स्नातक होने के बाद उन्होंने पेरिस यूनिवर्सिटी से इतिहास विषय में डी० लिट् की उपाधि प्राप्त की।

आर्य समाज के क्षेत्र में उनका योगदान स्तुत्य है। आर्य समाज के वृहद इतिहास लेखन के कार्य ने उनकी कीर्ति को अत्यधिक विस्तार दिया है।

महर्षि दयानन्द के बलिदान के पश्चात् 1883 में आर्यसमाजों की संख्या कुल 36 थी। एक सदी के अन्तराल में उनकी संख्या 5500 हो गयी। देश-विदेश में आर्य समाज के विटप का वितान हुआ जिसकी सघन शीतल छाया में जनमानस आनन्दित

हुआ। इस विराट् वृक्ष को अनेक बलिदानियों ने सींचा। आर्यसमाज के गौरवमय इतिहास को लिखने का दायित्व सार्वदेशिक सभा द्वारा डा० सत्यकेतु के नेतृत्व में एक गवेषक विद्वान् सम्पादक मण्डल का संगठन कर सौंपा गया। जिसमें डा० सत्यकेतु ने अनवरत अनथक परिश्रम किया जिसके परिणाम स्वरूप आर्य समाज के इतिहास के सात खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। जो एक महान् उपलब्धि है।

इतिहास की सामग्री एकत्रित करने का कार्य अत्यन्त महत्त्व का कार्य है। विशेषतया विविध संग्रहालयों में विद्यमान उन रिकार्डों को ढूंढ़ निकालने का, जिनका सम्बन्ध आर्यसमाज से है। इस कार्य हेतु स्वामी आनन्द बोध जी के निर्देशन पर डा० विद्यालंकार लन्दन गए। वहां ब्रिटिशम्युजियम, लाइब्रेरी, इण्डिया आफिस लाइब्रेरी तथा पब्लिक रिकार्ड आफिस से ऐसी उपयोगी व महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त की, जिसके द्वारा 1857 के स्वाधीनता संग्राम में साधु संन्यासियों के योगदान पर नया प्रकाश पड़ता है। आर्यसमाज के इतिहास में इसका महत्त्व इस कारण भी है क्योंकि 1857 क संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले अन्यतम संन्यासी स्वामी विरजानन्द भी थे। और सम्भवतः स्वामी दयानन्द भी उस अवसर पर तटस्थ नहीं रहे थे। महर्षि दयानन्द द्वारा स्वाधीनता के लिए किया गया कार्य तो इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है।

इस प्रकार डा० सत्यकेतु ने अपने जीवन की यात्रा हरिद्वार प्रारम्भ की थी। देश विदेश में कीर्ति फैलाकर वे सदा के लिए फिर उसी हरिद्वार की मिट्टी में आकर सभा गए। उनका अन्तिम संस्कार गंगा तट पर 17 मार्च को हुआ।

(आर्य सन्देश 26-3-89)

यह निश्चय है कि जैसा शील आचरण उत्साह और पुरुषार्थ प्रधान पुरुष करता है, वैसा ही इतर जन वर्तते हैं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज स्थापना दिवस

आर्यसमाज का स्थापना दिवस प्रत्येक आर्य के लिए बड़े महत्त्व का दिवस है, जो पवित्र-प्रेरणाओं के साथ आता है। इस वर्ष यह दिवस 6 अप्रैल 1989 को मनाया जायेगा।

इस दिवस की मुख्यतम प्रेरणा यह है कि हम सब आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूरा करते हुए उसके यश और विस्तार का कारण बनें। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के चहुँ ओर छाये हुए मूर्ति पूजा, अन्ध विश्वास, अनार्ष साहित्य, अवैदिक मन्तव्यों एवं आचरणों के गहरे बादलों को छिन्न-भिन्न करके उसके विशुद्धस्वरूप को दर्शाने और प्रसारित करने के महान उद्देश्य से आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्य समाज को इस कार्य में प्राण-पण से जुटे रहना चाहिए।

भोगवाद और उसके विविध अभिशापों से सन्तप्त जगत् में नैतिकता और आस्तिकता का जो स्थान इस समय खाली होता जा रहा है। उसकी पूर्ति की आर्य समाज पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। आर्यसमाज के पास उसके लिए प्रचुर साधन हैं और साथ ही योग्यता भी है। आर्यसमाज की प्रवृत्ति त्याग-प्रधान है। अपने सिद्धान्तों की मृदु, सरल एवं स्पष्ट व्याख्या से, समाज-सुधार से, धार्मिक शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ अध्यात्म पिपासा की सन्तुष्टि पर अधिकाधिक ध्यान और बल देने से यह कार्य सहज ही सम्पन्न हो सकता है। अपनी लेखनी और वाणी में प्रेरणा और बल लाने के निमित्त हमें एक महान् त्रुटि से अपने आपको मुक्त रखना होगा, और वह है आत्म-प्रवञ्चना। अपने अतीत का और अपनी परम्पराओं का गुणगान करना और अपने आचरण से उसका परिचय न देना वह अभिशाप है जिससे बड़े-बड़े कुल और जातियां नष्ट हो जाती हैं और हास्य का पात्र बन जाती हैं। आर्यसमाज का इतिहास बड़ा विशद है, उसकी परम्पराऐं बड़ी स्फूर्तिदायिनी हैं।

आर्यसमाज ने धार्मिक, सामाजिक औद राजनैतिक स्वस्थ नेतृत्व के लिए प्रचुर मात्रा में साहित्य तैयार किया। विद्वान्, शास्त्रार्थ महारथी, उपदेशक, लेखक, पत्रकार और कार्यकर्त्ता पैदा किये। आर्यसमाज ने जितने शहीद दिये हैं, उतने अन्य किसी समाज ने नहीं दिये। आर्यसमाज के संगठन की दृढ़ता की बराबरी अन्य कोई संगठन नहीं कर सकता। उसका संगठन लोगों की प्रशंसा और स्पर्धा का विषय बना रहा है।

भ्रमवश आर्यसमाज के अस्तित्व को मिटाने या उसको प्रभावहीन बनाने के लिए समय-समय पर अनेक राजकीय और अराजकीय स्तरों पर प्रयत्न हुए। वह इन परीक्षणों मे से गुजरने के लिए विवश हुआ। परन्तु सभी में बिजयी रहा। पटियाला का केस, हैदराबाद का धर्म युद्ध, सिन्ध-सत्याग्रह आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

आर्यसमाज स्थापना दिवस के पुनीत अवसर पर हम सबको अपने सिद्धान्तों, अपनी अनुपम संगठन शक्ति और नेतृत्व की उदार परम्पराओं के प्रति सच्चा रहने और उनमें वृद्धि करने का व्रत लेना चाहिए। इस समय संसार बन्धनों को तोड़कर उस धर्म की ओर जाने के लिए छटपटा रहा है जो बुद्धि ज्ञान और तर्क की भयंकर चपेटों में स्थिर रहकर बुद्धि को प्रकाश और हृदय को शान्ति दे सकता हो। वह धर्म सिवाय वैदिक धर्म के और कोई धर्म नहीं हो सकता जिसमें बुद्धि, तर्क, दर्शन, विज्ञान लोक और परलोक सभी प्रकार की समस्याओं का सुन्दर हल विद्यमान है और जो बुद्धि को सन्तुष्टि और हृदय की शान्ति का अजस्र स्रोत है।

(आर्य सन्देश 2-4-89)

राजा का मूर्ख होना तो बहुत बुरा है, परन्तु प्रजा का भी मूर्ख रहना बुरा है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

राष्ट्रनिर्माण में आर्यसमाज का यशस्वी योगदान

राष्ट्र-निर्माण में जिन व्यक्तियों का प्रमुख योगदान रहा है उनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती अग्रणी थे। विद्याध्ययन पूर्ण करके जब वह कार्य क्षेत्र में आए तब राष्ट्र की स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं भयानक थी। भारत अंग्रेजी शासकों से पदाक्रान्त था। पारस्परिक वैमनस्य के कारण स्थानीय राजा महाराजा असहायता के रोग से ग्रस्त थे। उन्हें राष्ट्रीय हित की कोई चिन्ता नहीं थी। ईश्वर और धर्म के नाम पर मनुष्य पशुओं की मौत मर रहा था, ऊँच-नीच छुआछूत का सर्वत्र बोलबाला था। नारी जाति को क्षुद्र कह कर शिक्षा से वंचित रखा जाता था, बाल-विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा आदि अनेक कुरीतियों के कारण राष्ट्र त्रस्त था।

1857 की क्रान्ति के असफल हो जाने के कारण अंग्रेज शासन ने जहां पूरी तरह से इस देश में अधिकार किया हुआ था वहां सामाजिक दृष्टि से भी हमारा भारत पर्याप्त दुर्बल हो चुका था। ऐसी विकट परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए महर्षि दयानन्द ने 'स्वराज्य सर्वोपरि है' का उद्घोष किया। राजा महाराजाओं को एकता के सूत्र में बांधकर धर्म और ईश्वर के नाम पर होने वाली विविध कुरीतियों को दूर किया। जन्मगत ऊँच-नीच को वेद विरुद्ध घोषित कर समाज में फैली भयंकर कुरीतियों के विरोध में आवाज उठाई और उन्हें दूर किया। राष्ट्र के निर्माण में बाधक इन कुरीतियों को सदा-सदा के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से सन् 1857 में उन्होंने बम्बई नगरी में सर्वप्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। आज से 105 वर्ष पूर्व सन् 1883 में दीपावली के दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण हुआ और उनके पश्चात् आर्यसमाज ने राष्ट्र निर्माण के हर क्षेत्र में अतुलनीय प्रयास किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्तों ने प्रेरणा पाकर, श्याम जी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, मदनलाल ढींगरा आदि ने विदेशों में जाकर भारतीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं जन-जागृति पैदा की। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, चौधरी रामभज दत्त, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, रोशनसिंह, ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल सुखदेव आदि अगणित क्रान्तिकारियों ने आर्य समाज से प्रेरणा लेकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया और शहीद हो गये।

शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के बाद आर्यसमाज का बजट ही सर्वोपरि रहा है। स्त्री शिक्षा, अन्तर्जातीय विधवा विवाहों की शुरुआत भी आर्यसमाज ने ही की, बहु-विवाह, बालविवाह एवं सतीप्रथा को रोक कर 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का उद्घोष किया। भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् आर्यसमाज का कोई भी कार्य-

क्रम शेष नहीं रहा जिसे भारतीय संविधान में स्वीकार न किया गया हो। अस्पृश्यता को आज अवैध माना गया है। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने 1857 ईस्वी में ही उसके विरुद्ध आवाज उठाई। अनेक अछूत (शूद्र) कहलाने वाले व्यक्तियों को आर्यसमाज ने विद्वान् और पण्डित बना कर उनका सम्मान किया और आज भी करता आ रहा है।

(आर्यसन्देश 2-4-89)

मैं जैसा सत्य धर्म की उन्नति और स्वदेश का उपकार होने में प्रसन्न होता हूँ, वैसा किसी अन्य बात पर नहीं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

नव सम्वत्सर

भारत विभिन्नताओं का देश है। यहां पर नववर्ष भी विभिन्न महीनों में विभिन्न प्रकार से मनाया जाता है। यहां की जाति, भाषा, वेशभूषा सम्बन्धी विशेषतायें बड़ी स्पष्ट हैं। इसी प्रकार नववर्ष के आयोजन सम्बन्धी परम्परायें भी विभिन्न हैं। इनके साथ अनेक प्रकार की दन्त-कथायें पौराणिक-आख्यान, और गल्प भी जुड़ गए हैं। समान है तो केवल एक बात। इस पर्व को सर्वत्र हर्ष और उल्लास से मनाया जाता है। संगीत और नृत्य की मस्ती इस पर्व के साथ जुड़ी है। वसन्त ऋतु के वसन्तोत्सव, फाल्गुन के फाग और होली के हुड़दंग के पश्चात् चैत्र मास में संवत्सर उत्सव का आयोजन प्रसिद्ध चेटि के साथ होता है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की आम्र बौर की गन्ध सी मादकता, मधुरिमा भरी होती है।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन, मान्यता है कि परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया था। चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन परमात्मा ने जगत् की रचना की। ब्रह्म दिन, सृष्टि संवत्, वैवस्वत मन्वन्तर, सतयुग आदि के आरम्भ और विक्रमी संवत् ये सभी चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होते हैं। भारत में इस पर्व को मनाने के प्रमाण प्राचीन काल से मिलते है। नववर्ष सभ्य जातियों में मनाया जाता है। ईसाईयों में New Year और पारसियों में नैरोज के नाम से मनाया जाता है। विभिन्न जातियों में इस पर्व को आनन्दानुभव के साथ-साथ अनुष्ठानों के साथ मनाया जाता है। यह मान्यता है कि सृष्टि के आरंभ में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा और सौर मेष संक्रान्ति एक साथ पड़ी थी। भारत में दो प्रकार के नववर्ष मान्य हैं। विक्रमी सम्वत् चन्द्रमा की कलाओं पर आधारित है और शक सम्वत् सूर्य की दिशाओं पर। भारत में ऋतुओं की गणना सौर वर्ष के अनुसार होती है, इसीलिए भारत सरकार ने शक सम्वत् को ही मान्यता दी है। सिंधियों में इस पर्व को चेटि चांद के रूप में मनाया जाता है। आन्ध्र प्रदेश में इसे उगाड़ी के नाम से मनाया जाता है। महाराष्ट्र में इसे गुड़ी पड़वा कहते हैं। घरों के सामने रंगोली सजायी जाती है। प्रातः स्नान, चन्दनलेपन के बादधार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं। लोग व्रत और उपवास भी रखते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी दिन आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्य लोग इसे प्रसन्नता और उल्लास से मनाते हैं। पर्वों के आयोजन सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता और राष्ट्रीय एकता का सन्देश देने वाले होते हैं। आओ हम भी इस दिन प्राणीमात्र के कल्याण की कामना करते हुए जीवन में दूसरों के सुख-दुःख के साथी बनें। और राष्ट्र की रक्षा, एकता और अखण्डता का व्रत लें।

(आर्य सन्देश 9-4-89)

वैशाखी

वैशाखी समग्रता और एकरूपता का पर्व है। यह देशवासियों के अतीत के गौरव, वर्तमान का उत्साह और भविष्य की प्रेरणा का पर्व है। यह पर्व किसान को मिलने वाली खुशी का प्रतीक है। किसान लहलहाते खेतों को देखकर प्रसन्न हो उठता है। दक्षिण भारत में यह पर्व पोंगल के नाम मनाया जाता है।

इस दिन के साथ अनेक ऐतिहासिक घटनायें भी जुड़ी हुई हैं। औरंगजेब के अत्याचारों और उसकी धार्मिक नीति के विरोध में सिखों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने 13 अप्रैल, 1699 को इसी दिन देश की एकता और अखण्डता बनाए रखने की प्रेरणा दी थी। 13 अप्रैल 1749 को अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर आक्रमण किया था तो जस्सायिंह अलुवालिया ने खालसा सेना बनाकर, मुस्लिम राज्य बनने से रोंका था। महाराजा रणजीत सिंह का राजतिलक भी इसी दिन हुआ था। 13 अप्रैल, 1919 को जलियाँवाला बाग की घटना ने भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानियों में एक नयी चेतना और स्फूर्ति डाल दी थी। जनरल डायर ने निहत्थे लोगों पर गोलियां चलवाई थीं। इस काण्ड में शहीद हुए लोगों के अमर बलिदान को आज भी याद किया जाता है। ऐतिहासिक महत्त्व के साथ-साथ इस दिन का आर्थिक महत्त्व भी है। गेहूं की कटाई लोग इसी दिन से शुरू करते हैं। यह त्यौहार अन्य राष्ट्रीय त्यौहारों की तरह अपने में भारतीय-संस्कृति को संजोये है। इस दिन लोग आपस में एक-दूसरे से मिलते है। वास्तव में वैशाखी आदमी को आदमी से जोड़ने का अवसर प्रदान करती है।

(आर्य सन्देश 9-4-89)

सर्वदा उद्यत, आलस्य रहित रहो, दीर्घ सूत्री कभी न हो।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

"जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगगा।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैद्य गुरुदत्त

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार वैद्य गुरुदत्त का 95 वर्ष की आयु में शनिवार 8 अप्रैल 1989 को निधन हो गया। उनका निधन सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक अपूर्णीय क्षति है।

वैद्य गुरुदत्त ने डी० ए० वी० स्कूल लाहौर से मैट्रिक पास करके, गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर से बी० एस० सी० और बाद में एम० एस० सी० की परीक्षाएं पास कीं। वे उसी कालेज में सहायक भी रहे। उसी कालेज में उन्होंने विज्ञान डिमान्स्ट्रेटर के पद पर कार्य किया। आर्यसमाज के वातावरण में पोषित वैद्य गुरुदत्त ज्यादा समय नौकरी न कर सके। भारत में असहयोग आन्दोलन चला तो वे भी नौकरी छोड़कर उसमें सम्मिलित हो गए। उन्होंने कुछ समय लाला लाजपत राय के नेशनल कालेज में प्रिंसिपल पद पर भी कार्य किया। यही समय था, जब वे लाला जी के सामीप्य में आते चले गए और देश में उस समय चल रही राष्ट्रीयता की लहर में वे कूद पड़े। साहसी निर्भीक गुरुदत्त सभी कठिनाइयों का सामना करते हुए, स्वाधीनता प्राप्ति के संग्राम में आगे बढ़ते ही रहे।

वैद्य गुरुदत्त का जन्म 1894 में लौहार के एक मध्यम वर्गीय आर्यसमाजी परिवार में हुआ था। उनके पिता की इत्र की दुकान थी, जहाँ पर शरबत, अर्क और अन्य औषधियाँ बनाती थीं। स्वामी दयानन्द के सुधारवाद के वे आजीवन समर्थक रहे। उन्होंने वेदों पर भी कार्य किया और वेदों के मन्त्रों के ऊपर आधारित उनके वक्तव्य समाज को एक नई दिशा प्रदान करने वाले हैं।

उन्होंने अपना पहला उपन्यास 48 वर्ष की परिपक्व आयु में 1942 में लिखा था— 'स्वाधीनता के पथ पर।' यह उपन्यास ऐतिहासिक दस्तावेज के साथ-साथ उस समय के स्वाधीनता सेनानियों के अन्तर्द्वन्द्व का बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। उन्हें हिन्दी प्रेमी पाठकों का स्नेह मिला और कुछ उपन्यासों को जो लोकप्रियता मिली, वह किसी भी साहित्यकार के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकती है। गुरुदत्त के सभी उपन्यासों में भारतीय धर्म और संस्कृति का विवेचन अवश्य ही मिलेगा। 'पूर्वाग्रह', 'वाममार्ग', 'बनवासी', 'दो भद्र पुरुष', 'बहती रेत' और 'जमाना बदल गया' जैसे उपन्यासों में उन्होंने भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों को अपने कथित पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में राजनैतिक कुचक्रों, पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों एवं सांस्कृतिक वैभव के सजीव चित्र मिलते हैं। सामाजिक उपन्यासों में 'उन्मुक्त प्रेम', 'पाणिग्रहण', 'विकृत छाया', 'ममता', 'प्रवंचना 'पंकज' और स्नेह का मूल्य' प्रमुख हैं। संस्कृति से सम्बन्धित उपन्यासों में प्रमुख कृतियाँ हैं—'जमाना बदल गया,' 'जीवन ज्वार', 'जात न पूछे कोय', 'स्खलन' आदि।

गुरुदत्त ने ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे। इन उपन्यासों को लिखने का उनका एक ही उद्देश्य था कि भारतीय आर्य जाति को जो लम्बे समय तक दासता की शृंखलाओं में जकड़ी रही थी, उसे अपने प्राचीन गौरव एवं वैभव से परिचित कराया जा सके 'पुण्यमित्र,' 'विक्रमादित्य सहसांक', 'लुढ़कते पत्थर' 'पत्र लता' और 'गंगा की धारा' उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

उन्होंने जहाँ वेदों पर कार्य किया, वहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवद्गीता पर भी काम किया। गीता के ऊपर उनकी टीका राष्ट्र मानस को कर्म की ओर प्रेरित करके नव शक्ति, नव चेतना एवं नव ऊर्जा प्रदान करती है। यह भारतीयों में आत्म शक्ति के प्रति सचेत करती है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के लिए उन्होंने श्री तीर्थराम आर्य और डा० धर्मपाल आर्य के अनुरोध पर एक पुस्तक लिखी थी 'धर्मवीर हकीकत राय'। इस पुस्तक के लिखने के बाद उनके चेहरे पर एक ऐसी आभा थी जिसका वर्णन संभवतः मुश्किल है। उत्सव समाप्त होने पर, संयोजक एवं कार्यकर्ता जैसी राहत महसूस करते हैं, बेटी विदा कर देने पर पिता जैसी शान्ति अनुभव करता है, दीक्षान्त के बाद आचार्य जैसे सन्तोष का अनुभव करता है, वर्षा के विघ्न से पहले किसान अपनी फसल को खलिहान से उठाकर घर में लाने पर जैसी शान्ति महसूस करता है, मुकद्दमा जीतने पर वकील और मुवक्किल के चेहरे पर जैसा सन्तोष होता है, वही सन्तोष गुरुदत्त जी के चेहरे पर उस दिन था। उनका कहना था कि लाहौर निवासी होने के कारण वीर हकीकत राय के ऊपर लिखकर मैं उऋण होना चाहता था, पर पूरे जीवन की आपाधापी में इस श्रद्धा नमन को मैं सदैव भूला रहा। सामयिक विवशताएं मुझे इस कार्य को स्थगित करने के लिए बाध्य करती रहीं। मैं अपनी इस अभिलाषा की अवहेलना पर लज्जित हूं। वह वीर हकीकत अपनी पुण्य पावन संस्कृति को जीवित रखने के लिए परम पुनीत बसन्त पंचमी के दिन मुगल शाही की तलवार से अपना सिर कटाकर संसार में एक आदर्श छोड़ गया। मैं प्रत्येक बसन्त पंचमी पर अपनी इस अभिलाषा का स्मरण करता था।

उन्हें बाद के दिनों में कोई विशेष चाह नहीं थी। हमें उनके घर से अनुनय विनय के बाद ही प्रकाशनार्थ एक चित्र मिल सका था। हम प्रणाम करते हैं उस सामर्थ्यवान पुरुष 'वैद्य गुरुदत्त' को जिसने अपनी नूतन शैली में इतिहास को एक प्रेरणास्पद रूप में प्रस्तुत किया।

(आर्यसन्देश 16-4-89)

जितनी पृथ्वी स्वराज्य की दूसरे राज्य में दबी है, उनके लिए अपील शीघ्र अवश्य होनी चाहिये।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

भगवान् राम की मर्यादा

आज यह प्रश्न उठता है कि क्या हम किसी मर्यादा में बँधे हैं, क्या हम शील-वान हैं, क्या हमारे अन्दर शक्ति है ? उत्तर मिलता है कि कहीं कुछ गड़बड़ा गया है। फिर हम राम का स्मरण करते हैं। उस महापुरुष में मर्यादा थी, उसमें शील था, उसमें शक्ति थी। क्या हम उस राम जैसा बन सकते हैं ? उस जैसा बनने के लिये उसका नाम तो लेना ही पड़ेगा और यदि हम उसका नाम लेते हैं, तो घोर साम्प्रदायिक बन जायेंगे। राम का नाम लेना खतरनाक हो गया है। राम का नाम लीजिए, हम धर्मनिरपेक्ष नहीं रहें। धर्मनिरपेक्ष रहने के लिए जरूरी है कि हम राम का नाम ही न लें, अयोध्या का नाम न लें, सरयू का नाम न लें, राम जन्म-भूमि का नाम ही न लें।

पर क्या यह सम्भव है कि राम का नाम भुला दिया जाये। राम का नाम तो हर जगह छाया हुआ है। वास्तव में राम वही होता है जो हर जगह छाया रहे राम का शाब्दिक अर्थ भी यही है—राम अर्थात् रमण करने वाला। जो सब जगह रमता है वही राम है। जो सब में रमण करता है, वही राम है। जिसमें जीवन है वह राम है, जिसमें जीवन नहीं है, वह 'मरा' हुआ है। 'मरा' से भी 'राम' तक पहुंचा जा सकता है। जीवन हीनता से भी जीवन्तता को पाया जा सकता है। जिसमें 'राम' नहीं है, वह भी राम को पा सकता है। जिसमें 'राम' नहीं है अर्थात् मर्यादा, शील, शक्ति नहीं है, वे भी 'राम' को पा सकते हैं, अर्थात् मर्यादा, शील, और शक्ति को पा सकते हैं।

राम का तो आज विरोध बहुत है। राम को अनेक 'महिला समितियां' क्रूर राजा मानती हैं। वे उसे अपने युग का बर्बर पति मानती हैं। उसने सीता का त्याग किया था। वे चाहती हैं कि उस धोबी को फांसी दी जानी चाहिए थी। इसका अर्थ यह हुआ कि वे सामन्तीयता की पोषक हैं। पर जब कोई दूसरा अवसर आता है अर्थात् किसी दूसरे मंच से बोलना होता है तो वही कहती हैं कि जनता ही सर्वो-परि शक्ति है। सामन्तीयता समाप्त होनी चाहिए। यहाँ पर वे धोबी के कहे अनुसार राम के काम को अच्छा मानने लगती हैं। शायद वे ही अपने विचारों में गड्डमड्ड हो जाती हैं। उन्हें सती से भी चिढ़ है और सीता से भी।

प्रारम्भ में बात उठाई गयी थी कि क्या आज राम की जरूरत है। यदि हम शक्ति, शील, मर्यादा चाहते हैं तो राम की जरूरत है और यदि नहीं चाहते तो हमें कोई जरूरत नहीं है। यदि हमें मानव बनना है तो 'राम' चाहिये, राम के गुण चाहिएं, राम के अनुसार अपने आपको बनाने की भावना चाहिए। नवरात्रों में शक्ति

की पूजा की जाती है । पर यदि हमें शक्ति की साधना करें और राम को भूल जायें, तो सब गड़बड़ हो जायगा । शक्ति की साधना करते समय धर्म को सदा साथ रखें। हम अपने सार्वजनिक जीवन को मर्यादा में बांध दें, अपने जीवन को सात्त्विक उद्देश्यों से अनुप्राणित करें । निरंकुश शक्ति मिल गयी और धर्म छूट गया तो हमारा सब कुछ लूट गया ।

इसलिये यही आवश्यक है कि उस महापुरुष राम के हम गुणों को धारण करें ।

(आर्य सन्देश 23-4-89)

जब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य दशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है, जो कुछ है सो भी विदेशियों के पाप्राक्रान्त हो रहा है ।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

राष्ट्रीय एकता के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्रीय एकता के लिये आज से सौ साल से भी पहले सराहनीय प्रयास किया था। उन्होंने भारत वर्ष के विभिन्न धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों को एकत्र करके राष्ट्रीय एकता के सूत्र खोजने की कोशिश की थी। उनकी इच्छा थी कि भारत के लोगों का स्वधर्म, स्वभाव, स्वभूषा तथा स्वराज्य हो। आर्यसमाज निरन्तर इन उद्देश्यों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए प्रयत्नशील है।

आर्यसमाज सी ब्लॉक जनकपुरी के वार्षिकोत्सव पर विभिन्न धर्माधिकारियों को एक मंच पर बुलाने का प्रशंसनीय कार्य किया गया। सनातन धर्म की ओर से पं० नीलकण्ठ शास्त्री, इस्लाम धर्म की ओर से मौलाना वहीदुद्दीन खाँ, सिक्ख धर्म की ओर से प्रो० जोगेन्द्र सिंह, निरंकारी मिशन की ओर श्री ब्रह्म ऋषि वासदेव राय ने अपने विचार प्रस्तुत किये तथा वैदिक धर्म की मान्यताओं को आर्य महोपदेशक प्रो० रत्नसिंह आदि ने प्रस्तुत किया। समापन करते हुए दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान डा० धर्मपाल ने कहा कि जो भी अच्छी बातें विद्वान वक्ताओं ने बताई हैं, वे सही हैं तो फिर किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं होना चाहिए, पर फिर भी साम्प्रदायिक झगड़े होते हैं। ये झगड़े वहाँ और भी ज्यादा हैं, जहाँ पर दो विभिन्न धर्मावलम्बियों की शक्ति, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से सन्तुलन बनाये होती है। हमें प्रयास करना चाहिये कि हम धर्म के मार्ग पर चलें। धर्म का मार्ग सदा एक होता है। वह सत्य पर आधारित होता है। वह सबके लिये एक समान होता है, और उसमें संसार का कल्याण निहित होता है।

आर्यसमाज एकता चाहता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शताधिक वर्ष पहले सभी धर्मों के अनुयायियों को एकता के सूत्र में बांधने की कोशिश की थी। इसी कोशिश को पुनः आर्यसमाज ने दुहराया है। इस दिशा में आगे भी प्रयास करना चाहिये। यदि वातावरण का निर्माण कर सकें, तो सफलता भी अवश्य मिलेगी।

(आर्यसन्देश 30-4-89)

धर्म और राजनीति

पिछले काफी दिनों से यह चर्चा चली आ रही है कि धर्म और राजनीति को अलग रखना चाहिए। इस पक्ष के दो पहलू हो सकते हैं। पहला पक्ष तो यह है कि धर्म और राजनीति का सन्तुलन बनाकर रखा जाये। इसको और स्पष्ट कर सकते है कि धर्मानुसार राजनीति की जाये। दूसरा पक्ष है कि धर्म में राजनीति की जाये अर्थात् राजनीतिक उपलब्धियों के लिये धर्म का सहारा लिया जाये। पाठक सुधी विद्वान् हैं। सभीं पहले पक्ष को ही वरीयता देंगे। पिछले दिनों दिल्ली में महावीर वनस्थली का उद्घाटन करते हुये भारत के प्रधान मन्त्री श्री राजीव गांधी ने कहा था कि साम्प्रदायिक ताकतों ने हमेशा देश को कमजोर करने की कोशिश की है, इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि धर्म में राजनीति का प्रवेश न होने दें। इस बात में सच्चाई है, परन्तु कहीं न कहीं साम्प्रदायिकता और धर्म के अर्थों को सही रूप में समझने में भूल हो गई है। साम्प्रदायिकता निश्चित रूप से विद्वेष फैलाती है। यदि दो या अधिक सम्प्रदाय हैं, तो वे आपस में जरूर लड़ेंगे। और यदि वे नासमझ हैं, तो और भी ज्यादा लड़ेंगे, परन्तु यदि वे दो या अधिक सम्प्रदाय धर्म के अर्थ को समझते हैं, तो वे नहीं लड़ेंगे। धर्म तो विद्वेष नहीं फैलाता। धर्म तो एक प्रकार की शक्ति है, धर्म तो अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये हमें प्रयत्नशील करता है—यतोऽभ्युदय निः श्रेयस्सिद्धि सः धर्मः। वैशेषिक दर्शन का यह दूसरा सूत्र है और यही धर्म की असली परिभाषा है। मनु महाराज ने जो धर्म की परिभाषा दी हैं, वह और भी ज्यादा व्यापक है—धृतिः, क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् मनु महाराज ने दस के धर्म उपादान लक्षण गिनाये हैं। जो व्यक्ति इन लक्षणों को व्यवहार में लाता है, वह धार्मिक है और ऐसा आदमी निश्चय ही किसी प्रकार के ईर्ष्या, द्वेष और लड़ाई से दूर रहेगा। महर्षि दयानन्द ने पूना में जो भाषण दिये थे, उनमें से एक भाषण धर्म के लक्षणों पर भी दिया था। उन्होंने इन लक्षणों में एक और लक्षण जोड़ लिया था—अहिंसा। अहिंसा की सार्थकता से आप सभी भली-भांति परिचित हैं। विश्व शान्ति और भाई चारे के लिये, लोगों के मन में दया, ममता, करुणा, सहनशीलता और पारस्परिक स्नेह का होना अनिवार्य है। ये सब बातें धार्मिक मनुष्य में अवश्य होती हैं। ये उस हर व्यक्ति में होती हैं, जो अहिंसा में विश्वास करता है।

इसलिए यह जरूरी है कि हम राजनैतिक न बनें, बल्कि धार्मिक बनें। हमारा जो भी राजकार्य हो, वह धर्म पर आधृत हो, यदि धार्मिक संगठनों में राजनीति आती है, तो निश्चय ही हमारा नुकसान है। अहिंसा का तात्पर्य यह भी नहीं है, कि हम अन्यायी के सामने झुकें। हमें केवल सही बात को ही मानना चाहिए।

(आर्य सन्देश 7-5-89)

काश ! हम चाणक्य बने होते

स्वतन्त्रता शब्द सुनने में बड़ा मधुर लगता है, और ठीक इसके विपरीत गुलामी, बंधन अथवा परतन्त्रता उतनी ही कर्ण-कटु। रबड़ को अधिक खींचेंगे तो उसके टूट जाने की आशंका होती है। इसी प्रकार जब स्वतन्त्रता अपनी सीमा का अतिक्रमण करती है तो वह निरंकुशता उच्छृंखलता अथवा उद्दण्डता का रूप धारण करने लगती है। नदी को यों ही खुला छोड़ दिया जाय तो वह विनाशकारी बाढ़ का रूप धारण करके प्रभूत मात्रा में जन-धन की हानि करती है। यदि उसी नदी के प्राकृत रूप को थोड़ा संवार दिया जाय तो वही विनाशक, विध्वंसक रूप सृजन और निर्माण का मसीहा बनकर खेतों में सोना उपजाता है। आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता और जरूरत से ज्यादा परतन्त्रता दोनों ही स्थितियाँ असामान्य प्रतिक्रिया को जन्म देती हैं।

तुलसीदास जी ने कहा है—

"वर्षा ऋतु चली फूट किआरी।
जिमि स्वतन्त्र ह्वै बिगरै नारी।"

संयोगवश 'राजनीति' शब्द भी स्त्रीलिंग है। नारी के लिए अधिक स्वतन्त्रता अच्छी नहीं है। और नारी ही क्यों पुरुष के लिए भी वही बात है।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के दसवें नियम में बड़ा ही स्पष्ट और संयत लिखा है कि सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहे।

विडम्बना यह रही कि हमने या तो ऋषि के मन्तव्यों को पूरा समझा नहीं और समझा भी तो उस पर आचरण नहीं किया यदि आचरण किया भी तो संगठित रूप में नहीं। कुछ लोगों ने आर्यसमाज को केवल धार्मिक और सामाजिक मंच मान लिया : राजनीति से बिल्कुल निरपेक्ष समझ लिया। जबकि ऋषि ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में तीन सभाओं धर्मार्य सभा, विद्यार्य सभा, राजार्य सभा का स्पष्ट उल्लेख किया है। केवल संकेत मात्र ही नहीं राजधर्म प्रकरण में राजा प्रजा के संबंधों पर काफी विस्तृत विश्लेषण और विवेचन किया है।

कुछ वर्ष पहले एक विदेशी सज्जन ने भारतीय राजनीति की स्थिति को देखते हुए कहा था कि मेरा पहले ईश्वर पर विश्वास नहीं था परन्तु भारत की राजनीतिक स्थिति, उसके नेताओं की अकुशलता और अक्षमता देखकर मुझे ऐसा लगता है कि यहां का ढांचा नेताओं द्वारा नहीं अपितु ईश्वर द्वारा चलाया जा रहा है। कितनी सच्चाई है इन पंक्तियों में। नेताओं का कोई धर्म, ईमान, सिद्धांत, नियम नहीं। यदि यह कहा जाये कि आज राजनीति की युवती आवश्यकता से अधिक बिगड़ गई है तो

भी अनुचित न होगा। वह और उसके चहेते केवल कुर्सी के लिए सब कुछ बेच देने को तैयार हैं। यहां तक कि अपनी माटी, अपना देश, अपने पूर्वज, अपनी माँ, अपना धर्म अपनी संस्कृति उनकी दृष्टि में कुर्सी की तुलना में बिल्कुल नगण्य हैं। किसी समय सुभाषचन्द्र बोस ने नारा लगाया था 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' आज का तथाकथित बोस नारा लगाता है 'तुम मुझे वोट दो मैं तुम्हें झूठे आश्वासन, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, गुंडागर्दी, अराजकता और अशान्ति दूंगा। तुम मुझे वोट दो, मैं तुम्हें पांच साल तक मुंह नहीं दिखाऊंगा, तुम मुझे वोट दो मैं कुर्सी की रक्षा के लिए तुम्हारे विश्वास को ठेस पहुँचाऊंगा, तुम मुझे वोट दो मैं स्वार्थ सिद्धि के लिए सब कुछ बेच डालूंगा। राजनीति के इस रूप को देखकर नीरज ने इसे वेश्या कह दिया तो कुछ अनुचित नहीं किया :

"यह न तेरे न मेरे बस की है।
कोई जाने नहीं ये किसकी है।
राजसत्ता तो एक वेश्या है।
आज इसकी तो कल उसकी है।"

आर्यसमाज एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। यदि वह राजनीति से निर्लेप रहता है तो उसमें अधूरापन ही आयेगा और कुछ नहीं। आवश्यक तो यह था कि हम आर्य वीरों की कुर्बानी को भुलाते नहीं। इतिहासकार लिखता है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन में 80 प्रतिशत आर्य वीरों ने कुर्बानियाँ दी हैं। वर्तमान नेता उस कुर्बानी को बेच रहे हैं और हम यह सब देख रहे हैं। क्या ही अच्छा होता कि ऐसे समय में हम चाणक्य बनते और अनेक चन्द्रगुप्तों का निर्माण करके राजनीतिक वेश्यावृत्ति को समाप्त कर डालते। आज का यथार्थ तो यह है :

"हर तरफ अन्धेर गर्दी हो रही है।
सादगी अब शील अपना खो रही है।
स्वप्न गांधी के कुंआरे हैं अभी तक,
देश भक्तों की समाधि रो रही है।"

(आर्य सन्देश, 14-5-89)

कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सामाजिक कुरीतियाँ और आर्यसमाज

यह प्रकृति का शाश्वत नियम है कि अच्छाई के साथ बुराई होती है, फूल के साथ कांटे होते हैं, देवों के साथ दानव होते हैं, मित्र होते हैं तो दुश्मन भी होते हैं। पुराने जमाने में आदमी अकेला रहता था, बाद में वह समुदाय में रहने लगा। फिर समाज बना और उसके बाद राष्ट्र और राज्य की बात सामने आई। विश्वबन्धुत्व और चक्रवर्ती साम्राज्य अथवा सार्वभौम साम्राज्य की परिकल्पना, उसके बाद आई। जब मनुष्य संसार को एक मानने लगा, सबको अपना मानने लगा, तत्पश्चात् पुनः अवनति प्रारंभ हुई। यह संसार टुकड़ों में बंट गया, राज्यों में बंटा। मनुष्य और मनुष्य में स्वार्थवश फूट पड़ी। भाई-भाई लड़ पड़े। कहना यह है कि ऐसा चक्र चलता रहता है।

हम बात कर रहे थे कि सामाजिक जीवन में जहां अच्छाइयां हैं, वहां बुराइयां भी हैं। हमारे समाज में अनेक रीतिरिवाज हैं जो हमें ऊंचाई की ओर ले जाते हैं। हमारे समाज में कुछ अन्धविश्वास भी हैं, सामाजिक कुरीतियां हैं, सामाजिक रूढ़ियां हैं। ये हमारी प्रगतिशीलता के मार्ग में अवरोधक हैं। ये हमारे मार्ग की बाधाएँ हैं। ये ज्योतिष्मान मार्ग के कण्टक हैं। ये मनुष्यता के मार्ग के रोड़े है। हमारा कर्त्तव्य है कि इन अवैधानिक और मूर्खतापूर्ण रूढ़ियों से छुटकारा पायें। ये किसी भी तर्क पर ठीक नहीं उतरतीं। इन सामाजिक कुरीतियों को निम्न प्रकार परिगणित कर सकते हैं— बाल विवाह, स्त्री वर्ग को शूद्र समझना, दलितों का मान न करना, गोवध चलते रहना पाषाण, नदी, वृक्ष, नक्षत्र, ताजिए, मजार, पीर, पैगम्बर में पूजा का भाव रखना अयोग्य, हठी, ठग, पाखण्डी, दुराग्रही, पण्डे, पुजारी ज्योतिषी, सिर हिलाना, फकीर, मुस्टण्डे आदि का मान करना, जगत् को मिथ्या और स्वप्नवत् मानना, मनुष्यकृत ग्रंथों में पूजाभाव रखना, अनाथ बालकों की रक्षा न करना, विधवाओं को सहारा न देना, वैदिक वर्ण व्यवस्था न मानना, वेदों के शुद्ध अर्थ का प्रचार न करना, मठ-मंदिरों में चढ़ावा चढ़ाना, दहेज-प्रथा, मृतक श्राद्ध, आर्य पर्वों को विकृत रूप में मनाना, अन्धविश्वास, छींक में भय, कुत्ते के कान फड़फड़ाने में भय, बिल्ली के रास्ता काटने में भय, भूत-प्रेतादि को मानना, मांस-मदिरा और धूम्रपान का निषेध न करना, आर्य जाति को हिन्दू नाम देना, संस्कृत भाषा में अरुचि होना, छुआछूत का भय होना, ऊंच-नीच की भावना, कुपात्र को दान।

ऊपर कुछ ही बुराइयां गिनाई गई हैं। कुछ और भी सामाजिक कुरीतियां हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। यह सामाजिक और मनीषी विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे इन बातों की ओर आर्यजनों का ध्यान करायें।

हमारे देश में यह मान्यता रही है, विशेष रूप से हिन्दू समाज में कि यदि किसी ने एक बार मुसलमान-ईसाई के घर खा लिया तो वह अपवित्र हो गया। हम

उसे पुनः अपने धर्म में मिलाने में कतराते रहे हैं। आर्यसमाज ने हमें यह बोध कराया कि हम अपने बिछुड़े भाइयों को गले लगायें । स्वामी श्रद्धानन्द का शुद्धि-चक्र हमें शक्तिशाली बनाता है । हमारे परिवार को बड़ा बनाता है । हम आज भी यह कार्य कर रहे हैं और यह कार्य मानवमात्र के कल्याण के लिए है । सार्वदशिक सभा ने मीनाक्षीपुरम, रामनाथपुरम, कालीहांडी क्षेत्र में अनेक मुसलमानों-ईसाइयों को पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित कराया और वे आज हमारे समाज के अंग हैं। हमारी यह सामाजिक कुरीति कि एक बार जो विधर्मी हो गया, उसे वापिस न लिया जाये, हमें समाप्त करनी होगी । यह कार्य आर्यसमाज ही कर सकता है और कर रहा है ।

छुआछूत हिन्दू समाज का कलंक है। आर्यसमाज ने अनेक हरिजनों को पंडित बनाया । आर्यसमाजों में अनेक हरिजन कुलोत्पन्न पण्डित, पुरोहित विवाह, यज्ञोपवीत, हवन आदि कराते हैं । छुआछूत को दूर करने में महात्मा गांधी को भी हम श्रेय देते हैं, पर उन्हें भी इस कार्य की प्रेरणा परोक्षतः आर्यसमाज से मिली थी । इस सम्बन्ध में उनका एक लेख 28-12-1932 को हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित हुआ इस लेख में उन्होंने एक प्रश्न उठाया था—अछूत का इस जन्म में उद्धार हो सकता है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर आर्यसमाज ने दिया है। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं। अनेक व्यक्ति जो हरिजन कुल में उत्पन्न हुए थे, बाद में देश के अग्रणी नेता बने ।

आर्यसमाज न जन्मगत जाति व्यवस्था में विश्वास करता है और न ही स्त्रियों की असमानता में । आर्यसमाज स्त्रियों को शूद्र (सेवक) नहीं मानता । उन्हें बराबर का स्थान दिया गया है। आर्यसमाज गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वर्ण व्यवस्था का समर्थक है । आर्यसमाज ने इस प्रकार जन्म के आधार पर जाति मानने की कुरीति का विरोध किया है ।

आर्यसमाज ने विदेश यात्रा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह पर लगे प्रतिबन्ध को भी समाप्त करने का सुष्ठु प्रयास किया है । आज हम विदेशों की यात्रा करते हैं । आर्यसमाज मन्दिरों में विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह भी सम्पन्न कराये जाते हैं। सती प्रथा का आर्यसमाज ने विरोध किया है । सती प्रथा का आविर्भाव ही विधवाओं की दुर्दशा से हुआ । यदि विधवाओं की समस्या न रहे, तो सती प्रथा ही न रहेगी। अभी दिवराला में काण्ड हुआ, आर्यसमाज ने अपनी सशक्त आवाज इसके विरोध में उठाई। राजा रामोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अभियान को आर्यसमाज ने शक्ति दी।

वर्तमान हिन्दू कोड अन्तर्जातीय विवाह की मान्यता देता है। आर्यसमाज ने बहुत पहले से ही कार्य आरम्भ कर दिया था। 1938 का आर्य मैरिज वैलिडेशन एक्ट, आर्यसमाज के नेता घनश्यामसिंह गुप्त के श्रेष्ठ कार्य का परिचायक है। शारदा एक्ट भी आर्यसमाज के प्रयास का ही परिणाम है, जिसके आधार पर बालविवाह पर पाबन्दी लगाई गई ।

आर्यसमाज का मूलाधार मूर्तिपूजा का विरोध है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि मूर्ति पूजा का प्रारम्भ जैनियों की मूर्खता के कारण हुआ था। मूर्ति पूजा अवैदिक है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद् यशः।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मूर्ति पूजा, कण्ठी, तिलक, नाम रटन आदि का सशक्त खण्डन किया है। पानी में तीर्थ बुद्धि रखने वालों को उन्होंने गधे के समान बताया है। हमारा कर्त्तव्य है कि इस कार्य को आगे बढ़ायें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गोवध-समाप्त कराने के लिए बहुत बड़ा कार्य किया था। हम आज भी गोवध निषेध कानून बनवाने में सफल नहीं हुए हैं। यह सामाजिक बुराई है। हमें चाहिए कि हम इस कार्य में प्राणपण से जुट जायें।

ऊपर अन्य अनेक कुरीतियों का जिक्र किया है। आर्यसमाज ने सदैव अपनी आवाज इनके विरोध में बुलन्द की है। हमें विश्वास है कि हम ऋषिवर दयानन्द के कार्य को अवश्य पूरा करेंगे :

छूतछात त्याग का अछूता उपदेश दिया,
भद्दी भेद भावना के भूत को भगा गया।
वैर को बिसार पुण्य प्रीति का पढ़ाया पाठ,
हृदयों को प्रेम के पीयूष में पगा गया॥

झूठे देवी-देवों के प्रपञ्च से छुड़ाके,
एक ईश की उपासना में सबको लगा गया।
देश हित साध के दिवाली को सदा के लिए,
आप सो गया आप ऋषि जग को जगा गया॥

(आर्य सन्देश 21-5-89)

सब मनुष्यों को उचित है कि आप अपने लड़के लड़की, इष्ट मित्र, अड़ोसी-पड़ोसी और स्वामी भृत्य आदि को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके सर्वदा आनन्द करते रहें।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैदिक समाज

अनेक इतिहासकारों ने वैदिक समाज के बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैलाने का प्रयास किया है। मेक्समूलर का नाम भी उन्हीं लोगों में आता है। मेक्समूलर शायद जब आर्य लोगों को आक्रमणकारी कहते हैं तो वो यह भूल जाते हैं कि इण्डोजर्मनिक या इण्डोयूरोपियन आर्य लोगों के पर्याय वाची नहीं हैं। उनके विचार से ये लोग आक्रमणकारी थे। उन्होंने अपने किसी ग्रन्थ में आर्य शब्द को किसी नसल से न जोड़ने की हिदायत भी दी थी। परवर्ती लोगों ने आर्य को ही हमलावर दिखला दिया, पर इनके करने से न कुछ हुआ है और न आगे होगा। वैदिक समाज के बारे में कितने ही फतवे दिये जायें अथवा भ्रान्तियां फैलाई जायें, फिर भी वैदिक समाज की जो परम्पराएं हैं, वे सभ्यता की कहानी ही बताती हैं। हमें पक्षपात रहित दृष्टि से देखना चाहिए और जब हम खुली आंखों से देखते हैं तो यह बड़ा स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक सभ्यता उन्नत थी और उस सभ्यता के लोगों ने ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित किये थे। उनकी उपलब्धियाँ तथा सफलताएँ चरम शिखर पर थीं। वैदिक समाज प्राचीन काल में कलाओं और शौर्य में विलक्षणता, प्रशासन में योग्यता, विधि निर्माण में विद्वत्ता तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में प्रवीणता प्राप्त कर चुका है। वैदिक संस्कृति का गठन अद्भुत है। भाषा-विज्ञान के विद्वान विलियम जोन्स ने माना है कि वैदिक सभ्यता का आदमी ग्रीक से अधिक निर्दोष और लैटिन से अधिक सक्षम था। यह संस्कृति किसी की भी तुलना में अधिक परिमार्जित है। वैदिक समाज का कार्य विभाजन भी बहुत विशद् है। अनेक मन्त्रों में कर्मार, तन्तुवायभिषक् शिक्षक जैसे व्यवसायों का विस्तृत जिक्र है। वेद में इनका उल्लेख बहुत अन्तरंग और आत्मीय है। अनेक मन्त्रों में कताई बुनाई के काम उपमा और रूपक बन कर आये हैं। वैदिक समाज की सम्पन्नता उनकी आवास व्यवस्था से भी झलकती है। वैदिक समाज ज्ञान-विज्ञान में कितना आगे था, यह इसी से सिद्ध है कि पहिये का निर्माण करने वाले ज्यामिति से परिचित थे। वे 360 अंश के वृत्त की भी कल्पना कर सकते थे। काल गणना, पृथ्वी का गोलाकार होना और सूर्य का अस्त न होना आदि बातों से वे परिचित थे। बाईबिल तो बहुत बाद में लिखी गयी! बाइबिल को मानने वाले जिन बातों से परिचित नहीं थे वैदिक समाज के लोग उन सब बातों से भी परिचित थे। गणित के क्षेत्र में शून्य से अनन्त तक पहुँचने की पद्धति दार्शनिकता को भी स्पष्ट करती है। आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में भी ये लोग पीछे नहीं थे। अश्विनी कुमार च्यवन, परिधि आदि नाम इस क्षेत्र की उत्कृष्टता को बतलाते हैं। पर्वत, समुद्र, नदियां, समुद्री विक्षोभ, ध्रुवतारा, सप्तर्षि मण्डल, जमीन की खोज, खतरे की खबर, कौओं और कबूतरों का उपयोग, अन्तरिक्ष विमान और रजस विमान का चित्र वैदिक समाज की उन्नतता का परिचायक है।

(आर्य सन्देश, 28-5-89)

विश्व कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर

हमें आज चारों ओर विश्वबन्धुत्व, सद्भाव एवं सहयोग तथा अन्य मानववादी विचारधाराओं को अनुप्राणित करने वाले नारे सुनाई पड़ते हैं, परन्तु दुःख की बात यह है कि जितना हम इनके विषय में सोचते हैं या नारे लगाते हैं, उतना ही हम मानववादी विचारधारा से दूर जा पड़ते हैं। भारतीय मूल के लोगों के साथ दक्षिण अफ्रीका में या फिजी और अन्य अनेक देशों में क्या हुआ ? हम सभी जानते हैं और जो ताजा घटनाएं नेपाल तथा भूटान में भारतीयों के साथ व्यवहार की जा रही हैं, वे भी आप सभी को आलोड़ित तो अवश्य करती होंगी। पंचशील, निर्गुट, सार्क, यू-एन-ओ जैसी संस्थाएं ऐसा प्रतीत होता है कि अपना अस्तित्व खो रही हैं। इनका अस्तित्व शक्ति से नहीं स्थापित किया जा सकता। इसे भी सहिष्णुता से ही स्थापित किया जा सकता है। व्यक्ति के ऊपर धर्म ग्रंथों का प्रभाव पड़ता है। उन पर भी पड़ता है, जो किसी भी धर्म को नहीं मानते। धर्म तो वही सिखाता है जो किसी एक का न हो बल्कि सब का हो। धर्म तो वही सिखाता है जो सत्य हो, सनातन हो और किसी भी कसौटी पर खरा हो। जो बात एक संदर्भ में ठीक और दूसरे में गलत हो, वह धर्म नहीं है। जो कालातीत, देशातीत तथा मानवातीत हो, वही सत्य है, सनातन है और धर्म है। सारे संसार को एक मानो। सारे संसार को श्रेष्ठ मानो। भाई-भाई से द्वेष न करे। तुम मनुष्य बनो। अपनी संतान को श्रेष्ठ बनाओ। ये सब धर्म के उपदेश हैं। ये सब वेद के उपदेश हैं। ये सब ईश्वरीय उपदेश हैं, और यही है विश्वबन्धुत्व। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी विश्वसाम्राज्य की परिकल्पना हमें दी थी।

हम इन खाइयों को पाट नहीं पाए। अलग-अलग देश होते, यह तो संभव नहीं हुआ। इसके विपरीत एक देश के ही अलग-अलग टुकड़े करने की हम बात सोचने लगे यह हमारा दुर्भाग्य है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के समय भारत पराधीन था। उस समय के नेता देश को आजाद कराना चाहते थे। वे पक्के राष्ट्रवादी थे। उन्हें टैगोर की अन्तर्राष्ट्रीय आस्था चुभती थी। पर वह तो सहृदय कवि था। वह सकरुण मानव था। उसके हृदय में जो टीस और विह्वलता थी, वह एक के लिए या कुछ के लिए न हो सकती थी, वह तो सबके लिए थी, मानवमात्र के लिए थी, प्राणीमात्र के लिए थी। संसार का उपकार करना उसे अभीष्ट था। उसके अन्दर उत्सर्ग की भावना उद्दीप्त हो चुकी थी। दीपक प्रकाश देता है, अपने को होम करके। यदि वह अपनत्व का त्याग न करे तो वह दूसरों का भला नहीं कर सकता। यदि परोपकार करना है, तो अपने आप को होम करना ही होगा। वह प्रकाश कर सकता है, जो तिल-तिल जलता है। वही दूसरों का भला कर सकता है जो अपनत्व का, अहं का, त्याग कर देता है।

ऐसे ही महामानव रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 8 मई को हुआ था। टैगोर के एक निष्ठावान मित्र थे सी० एफ० एण्ड्रूज। उन्होंने लिखा है कि वे एक बार टैगोर के साथ एक सरकारी किण्डर गार्डन स्कूल देखने गए। जापानी पोशाक में नन्हे-मुन्ने ड्रिल कर रहे थे। टैगोर ने उनसे पूछा ये बच्चे कैसे लग रहे हैं। एण्ड्रूज ने कहा—विनोद पूर्ण। टैगोर ने तिरस्कार पूर्वक कहा—विनोद पूर्ण ! मैं इसे विनोदपूर्ण नहीं कह सकता। तुम नहीं देख रहे हो कि मासूम बच्चे सैनिक वर्दी में हैं। तुम नहीं देख रहे हो कि ये सैनिक ड्रिल कर रहे हैं, तुम इसे विनोद पूर्ण नहीं कह सकते। यह घृणास्पद है। यह बुराई है। यह दुष्टता है और क्या तुम यह देखते हो कि रक्त से रंजित ये झण्डे दीवारों पर लटक रहे हैं इतनी कम उम्र में ही उन्हें लड़ने और मारने की शिक्षा दे रहे हैं। एण्ड्रूज ने लिखा है कि उस समय उनके चेहरे पर जो पीड़ा के भाव थे, मैं कभी भूल नहीं सकता।

टैगोर ने मानवता का संदेश दिया। मानवता का वह शाश्वत संदेश दिया जो उन्होंने वेदों से ग्रहण किया था। टैगोर ने अपनी पुस्तक 'नेशनलिज्म' में राष्ट्र की तुलना में मानवता को अपेक्षाकृत महान कहा है। इस पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगा था। विश्वयुद्ध के दिनों में इसे मानसिक विष कहकर नामंजूर कर दिया गया था। परन्तु यह पुस्तक गीतांजलि से भी ज्यादा प्रसिद्ध हुई। रोम्या रोलां, सिल्वियन लेवी, वर्ट्रेण्ड रसेल और बर्गसन जैसे विद्वानों और दार्शनिकों ने उनकी विचारधारा का स्वागत किया था। उन्होंने देश-देश नगर-नगर यात्रा करते हुए विश्वबन्धुत्व का उपदेश दिया था। वे स्वयं दृढ़ निश्चयी व्यक्ति थे तथा विश्व भर में पुनर्जागरण लाने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने एक बार कहा था—मैं रवि के अलावा कुछ नहीं हूँ। परन्तु मेरे छन्दों में जो अनश्वरता का चिन्तन करने वाले एशिया के महान हृदय का प्रतिबिम्बन होने दीजिए—जो आवाज सदियों से मौन हो गयी थी, उसे आज पुनः निश्चय के स्वर में मुखर होने दीजिए। क्योंकि मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि विश्व में अपने भ्रमण के दौरान मैंने इसकी आवश्यकता महसूस की है।

मानव में आस्था रखने वाले टैगोर का जन्म दिन बंगाल में नववर्ष के रूप में मनाया जाता है। पश्चिमी सभ्यता में उनका विश्वास अन्तिम दिनों में पूर्ण रूप से धराशायी हो चुका था, परन्तु वे आशावादी थे, वे न धैर्य खोते थे और न ही मनुष्य में अपनी आस्था।

(आर्य सन्देश, 4-6-89)

महिला संगठनों का कर्तव्य

इस लेख के शीर्षक से ऐसा लगता है कि कोई बात केवल महिला संगठनों को कही जा रही है। परन्तु मेरी बात महिला संगठनों के अतिरिक्त उन सभी संगठनों के लिए है जो स्त्री जाति का सम्मान चाहते हैं। आर्यसमाज विशेष रूप से—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता का उद्घोष करता आया है। आर्यसमाज के नेताओं ने कई आन्दोलन स्त्री जाति के सम्मान की रक्षा के लिए चलाये भी हैं। दहेज के लिए बहू को जला देना अथवा भ्रूण हत्या जैसे अत्याचारों के विरुद्ध भी आर्यसमाज ने आवाज उठाई। परन्तु पिछले दिनों पंजाब की महिला आई० ए० एस० आफिसर रूपन दिओल बजाज ने पंजाब पुलिस के महानिर्देशक के० पी० एस० गिल के खिलाफ जो याचिका दी थी, उसे उच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया है। श्रीमती बजाज के पति श्री भरतराज बजाज ने भी स्त्रियों के साथ छेड़खानी का एक मुकद्मा दर्ज किया था, उसे भी रद्द कर दिया गया है। यह दोनों अधिकारी वरिष्ठ आई० ए० एस० अफसर हैं। यदि इन लोगों की शिकायत पर कोई कार्यवाही नहीं होती और माननीय न्यायाधीश यह कहते हैं कि महिलाओं के साथ छेड़खानी का मामला बहुत छोटा है तो इससे ऐसा लगता है कि यदि साधारण छेड़खानी रोज होती रहे अथवा अन्य प्रकार की कोई छेड़खानी होती रहे तो न्यायालय कभी कोई कार्यवाही ही नहीं करेगा। माननीय न्यायाधीश महोदय ने यह भी कहा कि इस तरह के छोटे मुद्दे पर मुकद्मा चलाना कानून के साथ खिलवाड़ होगा। यह एक बड़ी विडम्बना है। न्यायाधीश महोदय शायद चाहते हैं कि स्त्री जाति के खिलाफ कोई बड़ा कारगुजारी वाला मामला हो जाये तभी मुकद्दमा चलाया जा सकता है। नवम्बर 1988 में गृह सचिव के घर पर एक पार्टी थी जिसमें श्री गिल ने नशे में धुत होकर श्रीमती बजाज को बार-बार छेड़ा था। वे उसके बार-बार मना करने के बावजूद भी उसे बार-बार छेड़ते रहे थे। ऐसा लगता है कि सरकार शायद शराब पीना और औरतों के साथ छेड़छाड़ करना पुलिस अफसरों के सरकारी कर्तव्यों का ही हिस्सा मानती है। इस मामले को छोटा समझा जाना नैतिकता की दृष्टि से बहुत बड़ी बात होगी। इस तरह तो लोगों को महिलाओं के साथ छेड़छाड़ करने की छूट ही मिल जाएगी। जिस पार्टी में यह गिल बजाज काण्ड हुआ था, उसमें शिष्ट समाज के बड़े-बड़े लोग थे। वहाँ कानून व्यवस्था के लिए जिम्मेदार लोग थे। वहाँ समाज के पहरेदार पत्रकार भी मौजूद थे। और स्वयं सेवी संगठनों के उच्च अधिकारी भी मौजूद थे। पर अचम्भा यह है कि श्रीमती बजाज के हक में कोई गवाही देने के लिए तैयार नहीं हुआ। उन सबका मानना तो यही था

कि पार्टियों में तो यह सब चलता ही है। यह बड़ी अजीब बात है कि एक तरफ तो हम गिल को वीर पुरुष कहें, क्योंकि वे आतंकवादियों के खिलाफ लड़ाई लड़ रहे हैं और दूसरी ओर उन्हें स्त्रियों के साथ खिलवाड़ करने की इजाजत दें। क्या स्त्री जाति का अपमान वीरोचित कर्म है !

(आर्य सन्देश 11-6-89)

जहाँ अभाग्योदय, वहाँ विपरीत बुद्धि मनुष्य परस्पर द्रोहादि स्वरूप धर्म से विपरीत दुःख के ही काम करते जाते हैं और जहाँ सौभाग्योदय वहाँ परस्पर उपकार, प्रीति, विद्या, सत्य धर्म आदि उत्तम कार्य अधर्म से अलग होकर करते रहते हैं। वे सदा आनन्द को प्राप्त होते हैं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

संस्कृत को हटाने वालों से कुछ प्रश्न

जहाँ तक तथाकथित त्रिभाषा सूत्र से संस्कृत को माध्यमिक स्कूलों से हटाने का प्रश्न है उसके लिए माध्यमिक शिक्षा केन्द्रीय बोर्ड ने 16-6-88 को सब स्कूलों को सर्कुलर भेजकर यह आदेश दिया था कि अंग्रेजी हिन्दी और एक आधुनिक भारतीय भाषा छात्रों की पढ़ाई जाए। सन् 1956 में सैकेण्डरी बोर्ड ने हिन्दी या अंग्रेजी" का जो विकल्प रखा था उसको एक झटके में ही छोड़ दिया गया। हिन्दी या अंग्रेजी में से किसी एक को स्वीकार करने के बजाय अब हिन्दी और अंग्रेजी दोनों को अनिवार्य कर दिया गया है। और तृतीय भाषा के रूप में संस्कृत को हटाकर आधुनिक भारतीय भाषाओं को स्थान दे दिया गया है। इन आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी उत्तर भारत के छात्रों के लिए दक्षिण भारत की भाषाओं को प्राथमिकता दी गई है। इस स्वेच्छाचारितापूर्ण आदेश से कुछ प्रश्न उपस्थित होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. यदि संविधान के अनुसार हिन्दी राजभाषा है और जब तक सब राज्य हिन्दी को स्वीकार न कर लें तब तक उसके स्थान पर अंग्रेजी को अतिरिक्त भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, तो फिर दोनों भाषाओं को पढ़ाना अनिवार्य क्यों किया गया ? वह विकल्प बना रहने दीजिए और छात्र की इच्छा पर छोड़िए कि वह जिस भाषा को अधिक उपयोगी समझे, उसे सीखे सेंट्रल बोर्ड का आदेश इस बात का स्पष्ट सूचक है कि वह अंग्रेजी पर अधिक जोर देना चाहता है।

2. यदि त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत-प्रत्येक छात्र को प्रादेशिक भाषा या अपनी मातृ-भाषा प्रथम भाषा के रूप में पढ़नी ही है तो उसे आधुनिक भाषा की सूची में से क्यों न हटा दिया जाये ? ऐसा लगता है कि यह केवल संस्कृत को हटाने के लिए किया गया है।

3. भारतीय संविधान के आठवें अनुच्छेद में वर्णित 15 भाषाओं में संस्कृत को जो स्थान दिया है उसे गैर-आधुनिक और प्राचीन (क्लासिकल) भाषा घोषित करने का परामर्श सैकण्डरी बोर्ड को किसने दिया ? 1986-87 तक जो भाषा प्रचलित और आधुनिक तथा अध्ययन के योग्य मानी जाती थी, और 1968 में निर्धारित शिक्षा नीति के अन्तर्गत इस बात पर जोर दिया गया था कि भारत के लिए संस्कृत का विशेष महत्त्व है इसलिए इसकी उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने चाहिए; अब एक वर्ष से कम समय में ही उसी सारी स्थिति को क्यों उलट दिया गया है ?

4. किस आधार पर संस्कृत को जर्मन और रूसी जैसी विदेशी भाषाओं और अरबी तथा फारसी जैसी पुरानी (क्लासिकल) भाषाओं के समकक्ष रखा गया ?

5. कई बुद्धिजीवी संस्कृत के प्रति अपनी अरुचि को छिपाने के लिए यह कहते है कि राष्ट्रपति को इस विषय में दखल नहीं देना चाहिए। क्या राष्ट्रपति कोई ऐसी

कठ पुतली है जिसकी डोर खींचने वाला कहीं छिप कर बैठा है और उसी की मर्जी के अनुसार वह कठपुतली नाचने लगती है। क्या राष्ट्र के मामलों में अपने विवेक से काम लेने का राष्ट्रपति को कोई अधिकार नहीं है ? या कोई रबड़ की ऐसी मोहर है जो इतने ऊँचे किन्तु मिथ्या पद पर बैठकर केवल सत्तापक्ष के सनक भरे निर्णयों पर ज्यों की त्यों छाप लगाने के काम आती है ? उसका यह कर्तव्य और उत्तरदायित्व नहीं है, जैसा कि प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक का है कि वह भारत के लिए क्या लाभकारी और क्या हानिकारी है, इसके सम्बन्ध में अपनी बुद्धि का प्रयोग कर सकें।

6. इसके अलावा शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति और अमल में आने वाले कार्यक्रम दोनों का संसद द्वारा सन् 1986 में समर्थन किया जा चुका है। तब फिर भारत के भावी निर्माता अबोध शिशुओं पर इस प्रगति-विरोधी त्रिभाषा सूत्र को जबरदस्ती थोपने का क्या औचित्य है ? संसद अपने विवेक के अनुसार 50 से अधिक बार, प्राय: संविधान की आत्मा में परिवर्तन करके भी, संशोधन कर चुकी है। तब क्या अपनी सुविधा के लिए अपने निष्ठुर बहुमत के द्वारा सत्तासीन दल फिर वैसा ही करना चाहता है ?

7. संस्कृत को केवल हिन्दी माध्यम के स्कूलों में हिन्दी के साथ 20 और 80 के अनुपात में रखना सन्तोषजनक नहीं है, क्योंकि भारत के गौरवपूर्ण अतीत की राष्ट्रीय अस्मिता की भावना की और संस्कृत द्वारा प्रसृत स्वतन्त्र चिन्तन की अक्षुण्ण धारा को केवल 20 प्रतिशत अंक में नहीं समेटा जा सकता। संस्कृत की सीधी हत्या करने के बजाय यह तो संस्कृत को शनैः-शनैः भूखा मारने के समान है। सच तो यह है कि इससे हिन्दी और संस्कृत को ही नहीं, बल्कि प्रत्येक भारतीय भाषा को भी हानि होगी। यह अत्यन्त लज्जा की बात है कि अंग्रेजी का वर्चस्व कायम रखने के लिए 'बांटो और शासन करो' का राजनैतिक फार्मूला भारतीय भाषाओं के साथ भी लागू किया जा रहा है। असल में तो अंग्रेजी के समर्थक उस बन्दर का-सा खेल-खेल रहे हैं जो दो बिल्लियों का इन्साफ करने के बहाने पूरी रोटी स्वयं खा जाता है।

8. खान-पान, रहन-सहन और बोलचाल में अनेक-अनेक भेद होने के बावजूद समस्त राष्ट्र की एकता और दृढ़ता की भावना संस्कृत के द्वारा ही सुरक्षित रही है। आदि शंकराचार्य से लेकर दयानन्द विवेकानन्द और राधाकृष्णन तक सभी महापुरुषों ने यही बात कही है तथा महात्मा गांधी से लेकर जवाहरलाल नेहरू तक सबने इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया है।

9. इन्हीं कारणों से तमिलनाडु की देशभक्त और राष्ट्रवादी संस्थाओं ने भी केन्द्र के समक्ष विरोध प्रकट किया है। वे जानते हैं कि स्कूलों से संस्कृत को हटाने का अर्थ होगा शेष समस्त देश से भावनात्मक तथा अन्य सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्धों का भी विच्छेद। इससे राज्यों में भी पृथकतावादी प्रवृत्तियां पैदा होंगी। तमिलनाडु ने यदि हिन्दी का विरोध किया था तो उसके कारण राजनैतिक थे। वस्तुत: दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की रिपोर्टों से पता लगता है कि वहाँ

लाखों लोग हिन्दी सीख रहे हैं और उनकी संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। तमिलनाडु के इस विरोध के कारण सरकार को अंग्रेजी के बजाय हिन्दी को लागू करने की प्रक्रिया को रोकने का बहाना मिल गया। परन्तु अब तो तमिलनाडु संस्कृत को चाहता है। क्या सरकार उनकी मांग को स्वीकार करेगी ? जनता स्वेच्छा से उस भाषा को सीखेगी जो उनके लिए हितकर हो, अंग्रेजी के सम्बन्ध में कोई मिथ्या धारणा नहीं बनानी चाहिए। जब तक अंग्रेजी से रोजगार मिलता है या अन्य सामाजिक और आर्थिक लाभ मिलते हैं, तब तक जनता उसे सीखेगी ही। जिस दिन भारतीय भाषाओं के माध्यम से ये लाभ मिलने लगेंगे उस दिन अंग्रेजी को लोग अपने आप छोड़ देंगे

10. प्रधानमन्त्री ने हमारी शिक्षा प्रणाली की पूर्णतया विफलता पर खेद प्रकट किया है। किस प्रकार नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है और भ्रष्टाचार पांव फैलाता जा रहा है, यह सुविदित है। समय-समय पर प्रधानमन्त्री जनता में देशभक्ति की कमी पर भी अफसोस प्रकट करते रहे हैं। किसानों के हित के लिए खर्च किए जाने वाले 6 रुपयों में से उन तक एक रुपया पहुँच पाता है। सदाचारी और ईमानदारी नर-नारियों का एक ऐक्यबद्ध सुदृढ़ राष्ट्र बनाने के लिए हमें संस्कृत के अध्ययन का विस्तार करना होगा और उसे पुनः जगाना होगा। यदि देश के बुद्धिजीवी आज संस्कृत को हटाने की सरकारी अक्लमन्दी पर शंका प्रकट करते हैं तो वह गलत नहीं है। वे भी देश के हितैषी हैं, देश के दुश्मन नहीं हैं, हमें उनके कथन पर ध्यान देना चाहिए।

प्रो० श्रीमती कमलारत्नम्, (आर्य सन्देश, 18-6-89)

जैसे शरीर के शिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में सन्यासाश्रम की आवश्यकता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

तम्बाकू रहित दिवस

विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से पिछले दिनों तम्बाकू रहित दिवस का आयोजन किया गया। उन्होंने विषय रखा था कि औरतों का धूम्रमान ज्यादा खतरनाक है। इस मौके पर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विश्व भर के तम्बाकू सेवन करने वालों से अपील की थी कि वे कम से कम एक दिन तम्बाकू का सेवन न करें। संगठन के दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्रीय निदेशक डा० यूकोको ने कहा कि तम्बाकू से पैदा होने वाली बीमारियाँ बहुत तेजी से बढ़ रही हैं। इसकी वजह से मृत्यु-दर में भी बढ़ोतरी हुई है। सांस की बीमारियां ऐसी हैं, जिन पर काबू पाया जा सकता है। उन्होंने बताया कि एक सर्वेक्षण के आधार पर जो व्यक्ति निरन्तर तम्बाकू का सेवन करते थे, उनको सांस की बीमारी बहुत अधिक थी। परन्तु जब उन्होंने तम्बाकू का सेवन छोड़ दिया तो 22 प्रतिशत व्यक्ति पूर्णतया सांस की बीमारी से मुक्त हो गये। तम्बाकू का सेवन करने से एशिया में बीमार लोगों की संखया कुछ सालों में बहुत अधिक बढ़ी है। फेपड़ों में कैंसर के लिए तो 90 प्रतिशत रोगियों में धुम्रपान जिम्मेदार है। अकेले भारत में 6 लाख 30 हजार मौतें प्रतिवर्ष धुम्रपान के कारण होती हैं। गले का कैंसर भी तम्बाकू खाने से ही होता है। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् ने यह जानकारी दी है कि तम्बाकू से पैदा होने वाली बीमारियों से मरने वालों की संखया 10 लाख तक पहुँच गयी है। 15 साल से ज्यादा पुरुषों में 70 फीसदी लोग महिलाओं में 25 फीसदी तम्बाकू का सेवन करते हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् के मुताबिक धूम्रपान की वजह से 40 साल से कम उम्र के लोगों को दिल का दौरा पड़ने का ज्यादा खतरा है। जिन युवा लोगों को दिल का दौरा पड़ा है, उनमें 76 फीसदी धूम्रपान करते रहे हैं। धूम्रपान से कैंसर, मुंह और गले की बीमारियां होती हैं। ज्यादा धूम्रपान करने वालों की कसरत करते समय या कसरत के फौरन बाद अचानक मृत्यु हो सकती है। यह निष्कर्ष हार्ट केयर फाउंडेशन आफ इण्डिया की तरफ से किये गए अध्ययन से निकला है। फाउंडेशन के अध्यक्ष श्री के० एल० चोपड़ा ने कहा कि रोज 2 बार 20 मिनट तक ध्यान लगाने से धूम्रपान की आदत से छुटकारा पाया जा सकता है। उन्होंने सरकार से अपील की कि सभी सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। तम्बाकू सेवन के दुष्परिणाम को लेकर पिछले दिनों अनेक कार्यक्रम हुए। भारतीय लोगों को इन तथ्यों से सीख लेनी चाहिए तथा धूम्रपान जैसी बुरी आदत से दूर रहना चाहिए।

(आर्य सन्देश, 25-6-89)

वेदप्रचार सप्ताह

आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य "वेद का सन्देश घर-घर पहुंचाना, सारे संसार को श्रेष्ठ बनाना, समाज में दिन प्रतिदिन फैल रही बुराइयों तथा कुरीतियों को दूर करना, सभी प्राणियों को अपने वास्तविक धर्म का ज्ञान कराना, युवा पीढ़ी को संगठित करना, अपने बिछुड़े हुए भाइयों को गले लगाना है। आर्यसमाज ने समय-समय पर विभिन्न आन्दोलनों में यह सिद्ध करके भारत की जनता को यह दिखा दिया है कि आर्यसमाज ही एक मात्र ऐसी संस्था तथा शक्ति है, जो भीषण परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए देश को सही रास्ता दिखा सकती है, तथा देश की एकता व अखण्डता के लिए कार्यरत है। सभा इस कार्य में आर्यसमाजों का हर प्रकार से सहयोग करती है।

आज देश की वर्तमान परिस्थितियों में फिर इसकी महती आवश्यकता है। हमें चाहिए कि समय-समय पर विभिन्न पर्वों पर हम ऐसे आयोजन करें, जिससे हमारे उपर्युक्त सभी उद्देश्य पूरे हों :

आगामी अगस्त मास में श्रावणी तथा जन्माष्टमी पर्व हैं। हमें अभी से इनको मनाने की तैयारियां प्रारम्भ कर देनी चाहिए। इन अवसरों पर आर्यसमाजों के अधिकारियों से मेरा अनुरोध है कि वह एक सप्ताह के वेद प्रचार सप्ताहों कथाओं उत्सवों, सम्मेलनों, प्रभात-फेरियों' साहित्य वितरण तथा जनसम्पर्क के आयोजन करें और सभा का इस कार्य में पूरा सहयोंग प्राप्त करें। सभा के पास महोपदेशकों तथा भजनोपदेशको की सेवाएँ हर समय उपलब्ध हैं। आप तिथियां निश्चित कर सभा से सम्पर्क करें और उपदेशक तथा भजनोपदेशक निश्चित कर लें। सभा के अन्तर्गत कार्यरत उपदेशकों तथा मानद रूप से सहयोग देने वाले उपदेशकों की सूची निम्न प्रकार है :

सभा के अन्तर्गत कार्यरत उपदेशक : सर्व श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती महात्मा रामकिशोर वैद्य, आचार्य हरिदेव सि० भूषण, पं० सत्यदेव स्नातक, पं० चून्नीलाल आर्य, पं० वेदव्यास आर्य, पं० ज्योति प्रसाद जी (ढोलकवादक) हैं।

सभा को मानद रूप से सहयोग देने वाले उपदेशक : पं० शिवकुमार शास्त्री (साकेत), डा० शिवकुमार शास्त्री (विकासपुरी) डा० महेश विद्यालंकार, डा० रघुवीर वेदालंकार, डा० सुखदयाल भूटानी, डा० धर्मदेव, पं० कामेश्वर शास्त्री, पं० यशपाल सुधांशु, आचार्य श्याम लाल, श्रीमती प्रकाशवती शास्त्री, डा० कृष्णदत्त, श्री रवीन्द्र कुमार शास्त्री, श्री वीरेन्द्र कुमार शास्त्री, पं० ब्रह्मप्रकाश शास्त्री, पं० सोमदेव शास्त्री

पं० नन्दलाल निर्भय, डा० महेन्द्रपाल, पं० बलबीर शास्त्री, आचार्य रामनिवास, पं० योगेश्वर चन्द्र, पं० हरिश्चन्द्र शास्त्री, पं० उदय श्रेष्ठ, पं० रवीन्द्रनाथ पाठक, पं० वेदप्रकाश आर्य, पं० देवशर्मा शास्त्री, पं० मुनिदेव, श्री प्रेमप्रकाश शास्त्री, पं० सत्यपाल मधुर, पं० हृदयनारायण शास्त्री, श्री श्यामवीर राघव, पं० कृष्ण चन्द्र आर्य।

(आर्यसन्देश, 2-7-89)

इसलिए जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहस्थाश्रम है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी, तीन आश्रमों को दान और अन्नादि दे के प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है, इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का साहित्य और गुरुकुल कांगड़ी का प्रह्लाद

अनेक मनीषी विद्वानों ने कई बार यह प्रश्न उठाया है कि आर्यसमाज के द्वारा साहित्य-प्रकाशन के कार्य में शिथिलता आई है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। आज-कल वैदिक साहित्य एवम् आर्यसमाज के साहित्य का प्रकाशन कई स्थानों की ओर से हो रहा है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित साहित्य की सूची पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि इस शिरोमणि सभा ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया है। वहां से वेदों का प्रकाशन तथा उनके अनुवादों के प्रकाशन का कार्य तो हुआ ही है, साथ ही अनेक मौलिक ग्रंथों एवं अनुसंधानपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन भी हुआ है। पुस्तकों का सचित्र प्रकाशन भी हुआ है। इसके लिए सभा के अधिकारी साधुवाद के पात्र हैं।

इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सभायें भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रका-शन कार्य कर रही हैं। पंजाब, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा आदि सभाओं के तो अपने स्वतन्त्र प्रकाशन हैं। कुछ ऐसे अनूठे ग्रंथ भी इन संस्थाओं ने प्रकाशित किए हैं जो अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रादेशिक सभा तथा डी. ए. वी. मैनेजमैंट कमेटी के भी अपने प्रकाशन हैं। यहाँ से अनेक सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

अनेक आर्यसमाजों ने भी अपने स्तर पर वैदिक साहित्य का प्रकाशन किया है। कलकत्ता, बम्बई तथा दिल्ली की कुछ आर्यसमाजों का इस दिशा में विशेष योगदान है।

इनके अतिरिक्त हमारे गुरुकुलों तथा कालेजों की ओर से भी अनेक ग्रंथों का प्रणयन एवम् प्रकाशन हुआ है। गुरुकुल झज्जर और गुरुकुल कांगड़ी के नाम इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। इन संस्थाओं से नियमित पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से नियमित रूप से कई पत्रिकायें निकलती हैं। इनमें एक पत्रिका प्रह्लाद है। इस पत्रिका का प्रकाशन त्रैमासिक होता है तथा इसमें सामान्तया गुरुकुल कांगड़ी की गतिविधियों के अतिरिक्त प्राच्य विद्याओं से संबंधित शोधपत्रों का संकलन भी किया जाता है। अभी पिछले दिनों इसका 'शिक्षांक' प्राप्त हुआ है। इस अंक में गुरुकुल कांगड़ी के प्राध्यापकों के लेख तो हैं ही। इसमें आर्य-समाज के विद्वानों के लेख भी हैं। प्राचीन भारत में गुरुकुलीय परम्परा तथा वर्तमान भारत में इनकी प्रासंगिकता से सम्बन्धित सुन्दर लेख संकलित किए गए हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सूक्ष्म जीव-विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री

खोज कर विद्वान् लेखकों ने स्तुत्य प्रयास किया है। इस पाश्चात्य मान्यता का इस बात से स्पष्ट खण्डन हो जाता है कि हमारे ग्रंथों में खेल, अध्यात्म अथवा दर्शन का ही भण्डार है। इन विद्वान् लेखकों को मैं बधाई देना चाहता हूं। गांधी की दृष्टि में गुरुकुल-शिक्षा लेख तो हमारी आंखें खोलने वाला है।

इस अंक में सम्पादकों डॉ० विष्णुदत्त राकेश और डा० विनोद चन्द्र सिन्हा का साधुवाद करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूँ। किसी भी पत्रिका के सम्पादन में पूरी संस्था का ही योगदान हुआ करता है। अतः गुरुकुल काँगड़ी के सभी अधिकारियों को इस सुन्दर अंक के लिए बधाई। यह बात भी बहुत ही प्रासंगिक है कि इस अंक में कुलाधिपति प्रो० शेरसिंह जी का चित्र भी प्रकाशित हुआ है। प्रोफेसर साहब शिक्षाविद तो हैं ही, वे शिक्षा सम्बन्धी चिन्तन से लम्बे समय से जुड़े रहे हैं और उन्होंने भारतीय शिक्षा प्रणाली को एक नया आयाम दिया है।

(आर्यसन्देश, 9-7-89)

विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग करके, परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का साहित्य

गत अंक में भी हमने लिखा था कि आर्यसमाज से सम्बन्धित संस्थाएँ इस दिशा में बहुत अच्छा प्रयास कर रही हैं। साहित्य का प्रकाशन अनेक स्थानों से होता है। सभी संस्थाएँ अपने अपने ढंग से यह कार्य कर रही हैं। विडम्बना यह है कि कुछ संस्थाओं के अधिकारी इस कला से परिचित भी नहीं है। आज तकनीन और विज्ञापन-कौशल का युग है। अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा पत्रकारिता, सम्पादन तथा प्रकाशन सम्बन्धी पाठ्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। जो पुराने लोग हैं, उनसे अपेक्षा करना कि वे इन पाठ्वक्रमों में अध्ययन करके उपाधि प्राप्त करेंगे और फिर वैदिक साहित्य का प्रकाशन करेंगे, नितान्त मूर्खता होगी। हमें इन्हीं परिस्थितियों में, और इन्हीं व्यक्तियों के सहारे इस कार्य को करना होगा। हाँ, यह अपेक्षा अवश्य की जा सकती है कि अधिकारी समय-समय पर अपने कार्य का विश्लेषण करते रहा करें अथवा अपने साथियों और संस्थाओं से सम्बद्ध विद्वानों की सम्मति ले लिया करें। इससे उन्हें भूल सुधार में सहायता मिलेगी। वे भविष्य में अच्छा प्रकाशन कर सकेंगे। पुस्तकें प्रकाशित करना सम्भवतः इतना कठिन नहीं है, जितना कठिन उन पुस्तकों को सही पाठकों तक पहुँचाना। पुस्तकें प्रकाशित तो हो जाती हैं क्योंकि दानदाताओं से धन मिल जाता है। कभी-कभी दानदाता उसे भी दान दे देते हैं, जो पात्र नहीं होता। अब समस्या यह है कि इन पुस्तकों को सही पाठक तक कैसे पहुँचाया जाए। ईसाई लोग छोटे ट्रैक्ट प्रकाशित करते हैं और सड़क पर खड़े होकर बांटते हैं। इस परम्परा को 'हरे रामा हरे कृष्णा' मिशन वालों ने भी अपनाया है। पर वे अपनी पुस्तकें निःशुल्क नहीं बांटते। आर्यसमाजों की संस्थाएं भी साहित्य प्रकाशित करती हैं, परन्तु ये पुस्तकें मुफ्त बांटती हैं और कुछ बेचती हैं। पुस्तक विक्रय से अगली पुस्तक के प्रकाशन के लिए धन आ जाता है। सम्भवतः यह तकनीक अच्छी भी है। वैदिक साहित्य के प्रकाशन में कुछ व्यापारिक प्रकाशन संस्थान भी लगे हैं और हम समझते हैं कि यह उनका वैदिक साहित्य के प्रति पारम्परिक तथा उत्तराधिकार में मिला, प्रेम ही है जो इस कार्य को कर रहे हैं, क्योंकि इससे उन्हें सम्भवतः व्यापारिक उपलब्धि अधिक न होती होगी। ऐसे व्यापारी प्रकाशक संस्थान हमारी बधाई के पात्र हैं।

पिछले अंक में बताया था कि कुछ आर्यसमाजें भी इस सुन्दर कार्य को कर रही हैं। आर्यसमाज सान्ताक्रुज, बम्बई की ओर से प्रकाशित 'परिवर्तन' एक ऐसी ही अनूठी पत्रिका है। इसका आवरण मोहक है, इसका कागज बढ़िया है और छपाई भी चाक्षुष तोष प्रदान करती है। कोई वस्तु देखने में अच्छी लगे, तभी तो

व्यक्ति उसकी ओर लपकेगा। दार्शनिक लोग इस वक्तव्य में चार दोष निकाल सकते हैं, पर यह सांसारिक दृष्टि से सत्य है कि सुन्दर वस्तु आकर्षक होती हैं। परिवर्तन के अप्रैल 1989 के अंक में सम्पादकों ने पठनीय सामग्री संकलित की है तथा उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया है। इस अंक में श्री आनन्दराव भगवन्तराव देशमुख का एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है जिसके पढ़ने से नई पीढ़ी को आर्यसमाज के समरांगण में कूद पड़ने की प्रेरणा मिलेगी। श्री आनन्दराव भगवन्तराव ने अपने साक्षात्कार में बतलाया हैं कि वे किस प्रकार श्री गणपतराय कतले के सेवाभाव एवं देशप्रेम से प्रभावित हुए थे। वे ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने के लिए केवल भाषण ही नहीं देते थे, बल्कि वे इस भाव को अपने व्यवहार में लाते थे।

हमारी आर्यसमाजों को चाहिए कि वे ऐसे सत्साहित्य के प्रकाशन के व्यवस्थित कार्य करें। सभी आर्यसमाज के संगठन में विश्वास रखें। वे केवल आर्यसमाज के साहित्य के प्रकाशन करने तक सीमित न रहें, बल्कि दूर-दराज के क्षेत्रों में आर्यसमाजों की स्थापना में सहयोग दें। यदि आर्यसमाज के कार्य को गांवों तक न पहुँचाया, तो हम ऋषि के कार्य को पूरा न कर सकेंगे।

इन्हीं दिनों एक और छोटी सी पुस्तिका प्राप्त हुई—पतन से वतन को बचाइए। यह पुस्तिका महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री दौलतराम जी चड्ढा के प्रवर्तन पर श्री श्रीराम वसिक आर्य ने लिखी है। यह छोटी सी पुस्तिका साहित्य साधना के उद्देश्य से नहीं लिखी गई। इसमें साहित्यिकता के कोई गुण हैं भी नहीं, पर यह पुस्तिका हृत्-तन्त्री के तारों को झंकृत करती है तथा सभी दिशाओं में इस स्वर को गुंजित करती कि आर्यो, जागो, आर्यसंस्कृति आर्यावर्त को पूर्वजों की तरह जगद् गुरु बनाओ। यह पुस्तिका सोई जाति के लिए उद्बोधन है। यह पुस्तिका पिछले कुछ वर्षों में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान माननीय श्री स्वामी आनन्दबोध सरस्वती के नेतृत्व में आर्यसमाज द्वारा देश, धर्म और जाति की रक्षा के लिए गए कार्यों का संक्षिप्त दस्तावेज है। इस पुस्तिका के पढ़ने से प्रेरणा मिलती है कि मनुष्य वास्तव में मनुष्य बने, वह धार्मिक बने, उसमें सह-अस्तित्व एवं भ्रातृत्व की भावना आए, वह दंगे-फिसाद न करें, वह सबको अपना मानें और यह भावना केवल कृण्वन्तो विश्वमार्यन् से आ सकती है। यही वैदिक सन्देश दूर-दूर तक पहुँचने के लिए आर्यसमाज के संस्थापक युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हमें जगाया था। हमें स्वराज्य मिल गया है, पर हमें सुराज्य चाहिए, हमें समाज-सुधार चाहिए। हमें राष्ट्ररक्षा की भावना से कार्य करना होगा। हमें अपने उत्तरदायित्व पहचानने होंगे।

आर्यसमाजों को चाहिए कि जन-जागृति के लिए, अपने संगठन को मजबूत करने के लिए इस प्रकार का साहित्य प्रकाशित कर करके जन-जन तक पहुँचायें।

ऐसी ही एक पुस्तिका स्वामी इन्द्रदेव यति द्वारा लिखित 'काले अंग्रेजों का शासन', भयंकर गुलामी 15 अगस्त 1947 से प्रारम्भ प्राप्त हुई। इस पुस्तिका में केवल तिथियाँ दी गई हैं, विवरण नहीं दिए गए। घटनाएँ सत्य हैं और सभी को झकझोरती हैं।

आओ, आज सब मिलकर व्रत लें कि देश, धर्म और जाति की रक्षा के लिए वैदिक धर्म का प्रचार करेंगे तथा सत्साहित्य जन-जन तक पहुँचायेंगे।

(आर्यसन्देश 16-7-89)

वेद अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस-उस का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिस लिए हमको वेदमान्य है, इसलिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यों को एकमत होकर रहना चाहिए।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन

आर्य सन्देश के पिछले अंकों में हम ने आर्यसमाजों, प्रतिनिधि सभाओं तथा शिक्षण संस्थाओं द्वारा वैदिक साहित्य के प्रकाशन, विक्रय एवं वितरण में किए गए उल्लेखनीय कार्यों का विवरण दिया था। इस दिशा में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार का कार्य विशेष रूप से प्रशंसनीय है। 1987-88 में स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की ओर से डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के अभिनन्दन में 'वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाज दर्शन' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया। इस ग्रन्थ के सम्पादन का उत्तरदायित्व हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, सुप्रसिद्ध समालोचक एवं आर्य जगत के अग्रणी मनीषी डा० विष्णुदत्त राकेश को दिया गया जिसे उन्होंने सुपरिचित कुशलता एवं दक्षता के साथ वहन किया। इस महान कार्य की प्रेरणा तत्कालीन कुलपति प्रो० रामचन्द्र शर्मा ने दी तथा इस योजना को संरक्षण प्रदान किया स्वर्गीय डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा श्री सोमनाथ मरवाह ने।

इस ग्रन्थ के आधार डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार किसी प्रकार के परिचय की अपेक्षा नहीं रखते। वे तो ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनके ऊपर यदि किसी ने लिखा तो वे धन्य तो हुए ही, प्रसिद्ध भी हुए। डा० सत्यव्रत और गुरुकुल काँगड़ी पचास से भी अधिक वर्षों तक एक-दूसरे के पर्याय रहे हैं। उनके अथक प्रयासों से इस संस्था शिक्षा जगत में और साथ ही औषधि निर्माण के व्यवसायिक जगत में कीर्तिमान स्थापित किए हैं। स्वामी श्रद्धानन्द के प्रिय शिष्य तथा आगे चलकर उनके कार्यों को निरन्तर गति प्रदान करने वाले डा० सत्यव्रत जी पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के भी अन्तरंग सहयोगी रहे। इतिहास केवल उन्हीं को याद करता है जो अपनत्व को भुला कर अपने अपने उद्देश्य का ही एक अंश बन जाते हैं। डा० सत्यव्रत जी विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग से विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षा संस्थान की मान्यता मिल जाने के बाद, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पहले कुलपति भी बने और बाद में वे इसके विजिटर भी नियुक्त किए गए।

डा० सत्यव्रत जी इतने महत्यपूर्ण पदों पर रहते हुए भी, अध्ययन और लेखन के लिए सदा समय निकालते रहे। आदरणीय डा० साहब को अनेक संस्थाओं ने समय-समय पर अलंकृत करके अपने को ही गौरवान्वित किया। इस महान ग्रन्थ में उनकी प्रमुख पुस्तकों से भी कुछ उद्धरण दिए गए हैं तथा उनका सामान्य परिचय दिया गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ का कलेवर बहुत बड़ा है, परन्तु इसमें डा० साहब के महान व्यक्तिततव और कृतित्व को पूरी तरह समेट पाना सम्पादक महोदय के लिए असाध्य नहीं तो दुःसाध्य कार्य अवश्य था। इस ग्रन्थ को सात भागों में विभाजित

किया गया है—[illegible] के स्वर, शुभकामनाएँ और स्नेहाञ्जलियाँ, प्रज्ञालोक, जीवन यात्रा, ग्रन्थों का परिचय, लेखन परिदृश्य तथा आर्यसमाज-साहित्य परिदृश्य।

प्रज्ञालोक के अन्तर्गत जिन महान् विभूतियों ने माननीय डा० साहब के विषय में लिखा है, उनके नामों के परिगणन मात्र से यह स्पष्ट है कि डा० सत्यव्रत इस संसार में किन ऊँचाइयों पर थे। वैदिक संस्कृति के उस अभिनव व्याख्या को हमारा शत-शत प्रणाम।

हमें विश्वास है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय इस दिशा में अनवरत प्रयत्नशील रहेगा और ऐसे महान् ग्रन्थ आर्य जगत् को भविष्य में भी प्राप्त होते रहेंगे। ऐसे ही भव्य ग्रन्थ की हम अपेक्षा करते हैं कि गुरुकुल कांगड़ी के ही सुयोग्य स्नातक, प्रोफेसर, कुलपति तथा कुलाधिपति आदि पदों पर लम्बे समय तक कार्य करने वाले साहित्य सर्जक तथा आर्यसमाज को उसका इतिहास उपलब्ध कराने वाले डा० सत्यकेतु विद्यालंकार पर भी शीघ्र ही तैयार किया जाएगा।

इस बार पुनः इस भव्य कार्य की योजना बनाने वाले तथा इसे क्रियान्वित करने वाले मनीषी विद्वानों का अभिनन्दन।

(आर्यसन्देश 23-7-89)

जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं, वैसे वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं। जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है, उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है। जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो, वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थपरता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन

आर्य सन्देश के पिछले अंकों में आर्यसमाज की संस्थाओं द्वारा प्रकाशित साहित्य के विषय में लिखा गया है, उसी श्रृंखला में आर्यसमाज सिंगापुर की हीरक जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के संबंध में पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं इन स्मारिकाओं के प्रकाशन से हम आर्यसमाज के द्वारा किए गए कार्यों का स्मरण करते हैं, यह महान् कार्य आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ाने में प्रेरणा भी देते हैं। इस स्मारिका में आर्यसमाज के प्रवर्त्तक वैदिक धर्मपुनरुद्धारक आचार्यों के आचार्य परिव्राट सम्राट सकल शास्त्र निष्णात, अलौकिक एवं अद्भुत तार्किक, मेधावी, संन्यासी योद्धा महर्षि दयानन्द सरस्वती के कृतित्व एवं कर्त्तृत्व पर प्रकाश डाला गया है। सिंगापुर महासागर के बीच में स्थित एक छोटा सा द्वीप है। परन्तु यह संसार के लोगों को सांस्कृतिक तथा व्यापारिक दृष्टि से जोड़ने का कार्य करता है। इस समृद्धशाली द्वीप पर हजारों सालों से भारतीय व्यापारी, धर्मोपदेशक यहाँ आते रहे हैं। इन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति का संदेश यहाँ पर पहुँचाया है। आर्यसमाज सिंगापुर भी पिछले साठ वर्षों से संसार को वैदिक संस्कृति का संदेश दे रहा है। इस स्मारिका के माध्यम से भी इस आर्यसमाज ने आर्य ग्रन्थों से उदाहरण देकर वैदिक मान्यताओं का ही प्रचार किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को हिन्दी अथवा अंग्रेजी माध्यम से पाठकों तक पहुंचाया है। आचार्य विजय मित्र शास्त्री गौड़ का लेख वेद विद्या क्या है, वेदों का काल कौन-सा था तथा वेदों में कौन-कौन सी विद्याएं निहित हैं, अनुसंधानपूर्ण लेख है। बाद में कुछ लेख मनुष्य के आचरण एवं व्यवहार को उन्नत करने के लिए स्मारिका में संकलित किए गए हैं। स्मारिका का कलेवर भव्य एवं गरिमापूर्ण है। इसके संपादक बधाई के पात्र है। अन्य आर्यसमाजों को भी वैदिक धर्म के प्रसार हेतु समय पर ऐसी पत्रिकाएँ प्रकाशित करनी चाहिए।

(आर्यसन्देश 30-7-89)

डा. सत्यकेतु विद्यालंकार स्मारिका

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के मुखपत्र आर्यसन्देश का भव्य विशेषांक, स्व० डा० सत्यकेतु विद्यालंकार के आगामी जन्मोत्सव (19-9-89) पर निकालने की योजना बनाई गई। भारतीय साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में आपका योगदान स्मरणीय है। आप को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने संवत् 1986 में उस समय का सर्वोच्च मंगलाप्रसाद परितोषिक प्रदान किया था। आपके इतिहास सम्बन्धी खोज-पूर्ण कार्यों की अपनी विशेषता है। डा० साहब ने साहित्य की सभी विधाओं में उल्लेखनीय कार्य किया है। आर्यसमाज का बृहद् इतिहास भी उन्होंने सात विशाल खण्डों में लिखा और प्रकाशित कराया।

सभी लेखकों और डा० साहब के आत्मीय जनों से निवेदन है कि वे उनके सम्बन्ध में अपने संस्करण तथा लेख आदि 20 अगस्त तक सभा कार्यालय में भेज दें। साहित्यकारों, समीक्षकों तथा इतिहासकारों से निवेदन है कि वे उनकी कृतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण यथासमय भिजवायें जिससे कि सभी को उनकी कृतियों से भी परिचित कराया जा सके। शोधपूर्ण लेखों के लिए पारिश्रमिक की भी व्यवस्था की जा रही है।

इस स्मारिका के सम्पादन में पं० क्षितीश वेदालंकार, पं० विद्या सागर विद्यालंकार, पं० नरेन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० यशपाल सुधांशु, श्री मूलचन्द गुप्त, श्री अजय भल्ला, श्री वेदव्रत शर्मा आदि वैदिक विद्वानों एवं पत्रकारों का भी सहयोग लिया जा रहा है।

विज्ञापनदाताओं तथा आर्यसमाजों के अधिकारियों से निवेदन है कि वे यथा-शक्ति अपना आर्थिक सहयोग दें एवम् इस स्मारिका को भव्य एवं संग्रहणीय बनाने में सहयोग प्रदान करें। इस स्मारिका का प्रकाशन अगस्त के अन्तिम सप्ताह में प्रारम्भ किया जाएगा। अतः सभी से पुनः निवेदन है कि वे समयानुसार अपने लेख, समीक्षाएँ, विज्ञापन तथा आर्थिक सहयोग भेजकर हमारा उत्साहवर्धन करने की कृपा करें।

(आर्यसन्देश, 6-8-89)

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्यसमाज का योगदान

"संस्कृत भाषा सारी भाषाओं का मूल है। इस भाषा सदृश मृदु, मधुर और व्यापक, सर्वभाषाओं की माता, ऐसी दूसरी कौन-सी भाषा है।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आज यह आम धारणा है कि हमारे देश को स्वाधीनता दिलाने में कांग्रेस का हाथ है। इस धारणा को झुठलाया भी नहीं जा सकता, क्योंकि जब भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, उस समय आंदोलन की बागडोर कांग्रेस के हाथ में ही थी और जब स्वतन्त्रता मिल गई, उसके बाद देश की बागडोर भी कांग्रेस के नेताओं के ही हाथ में ही आई। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस विचारधारा के प्रणेता कांग्रेस के ही नेता थे अथवा उनसे पहले भी किसी ने स्वाधीनता के लिए कोई प्रयास किया था ? भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) ने सर्वप्रथम स्वराज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष की घोषणा लाहौर में 1929 में की थी। इससे पहले कांग्रेस ने 1927 में पूर्ण स्वराज्य को अपना ध्येय घोषित किया था। इससे पहले 1916 में लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने एक नारा दिया था—स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' कांग्रेस के मंच से सबसे पहली बार 'स्वराज्य शब्द का उच्चारण दादा भाई नौरोजी ने किया था।

किंतु महर्षि दयानन्द सरस्वती के मस्तिष्क में यह विचार बहुत पहले अंकुरित हो चुका था। उन्होंने 1875 में घोषणा कि थी—'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में न रहे तथा हम पराधीन कभी न रहें।' महर्षि ने भारतीयों को एक चेतावनी देने हुए कहा था—'कोई कितना ही कहे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि सर्वोत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये के पक्षपात से शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।'

महर्षि ने पूर्ण स्वराज्य का स्वप्न इससे भी पहले देखा था। यह अनुसंधान विषय है कि 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के दौरान स्वामी जी क्या कर रहे थे। जो तथ्य अभी तक प्रकाश में आए हैं, वे स्पष्ट करते हैं कि स्वामी जी एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर और घूम-घूमकर लोगों में स्वाधीनता की अग्नि प्रज्वलित कर रहे थे।

वेलेण्टाइन शिरोल ने 'इण्डियन अनरेस्ट' में लिखा था कि जहाँ-जहाँ आर्य-समाज का दौर है, वहाँ-वहाँ राजद्रोह प्रबल है। महात्मा गाँधी भी बिना बुलाए स्वामी श्रद्धानन्द को मिलने गए थे। वह समय था जब आर्यसमाज और विद्रोह पर्यायवाची बन गए थे। कांग्रेस का इतिहास लिखने वाले डा० पट्टाभि रमैया ने लिखा है कि असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाले और जेल काटने वाले 80 प्रतिशत आर्यसमाजी थे।

निश्चय ही आर्यसमाज की भूमिका स्वाधीनता संग्राम में अग्रणी रही है।

(आर्यसन्देश, 13-8-89)

कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्रावणी-उपाकर्म

वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि ने बताया है कि यह परम धर्म है। एक धर्म होता है और दूसरा परम धर्म। इनका भेद स्पष्ट करने के लिए इतना ही पर्याप्त है—एक आत्मा है और दूसरा परमात्मा। परम शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। एक धर्म है जो हमारा दायित्व है, जो हमें नित्य प्रतिदिन करना है। एक दुकानदार ईमानदारी से सही दाम बताता है, यह उसका धर्म है। वह अपने मुँह माँगे दाम लेता है, यह उसका धर्म है क्योंकि वह वस्तु उसकी है। परन्तु जब वह ईमानदारी से तोलता है ग्राहक को धोखा नहीं देता, वह कम नहीं तोलता, उसका बुरा अपने मन में नहीं लाता, यह परम धर्म है। डाक्टर रोगी का उपचार करता है, अपनी फीस लेता है, यह उसका धर्म है, पर जब वह उसके भविष्य के लिए भी कल्याण की कामना करते हुए, ऐसे औषध देता है कि वह भविष्य में बीमार न पड़े, यह उसका परम-धर्म है। बस यही वेदों में कहा गया है—तू मनुष्य बन, अपना कल्याण कर, अपने पड़ोसी का कल्याण कर, अपने समुदाय का, समाज का कल्याण कर, देश का और सर्वोपरि विश्व का कल्याण कर। तू विश्व मानवता में विश्वास कर—बस यही परम-धर्म है। इसी परम-धर्म का ज्ञान हमें वेद देते हैं। इस श्रावणी उपाकर्म के समय वेद-सप्ताहों का आयोजन इसीलिए किया जाता है कि हम वेदों की वाणी को पढ़ें-पढ़ायें, सुनें और सुनायें।

हम कोई शास्त्रीय व्याख्या न करके सामान्य सी बात कही है। हम आशा करते हैं कि आर्य जन इस आयोजन को रस्म अदायगी तक सीमित न करके आचार और व्यवहार में भी लायेंगे। मनुस्मृति में तो कहा भी है—आचारः परमो धर्मः।

(आर्यसन्देश, 13-8-89)

संसार में जितने दान हैं, अर्थात् जल, अन्न गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल सुवर्ण, और घृत आदि, इन सब दानों में वेद विद्या का दान सर्वश्रेष्ठ है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

संस्कृत दिवस

प्रसन्नता है कि भारतीय जनमानस श्रावणी पर्व को संस्कृत दिवस के रूप में भी मनाने लगा है। भारतवर्ष के लिए संस्कृत की उपादेयता स्वयं सिद्ध है। संस्कृत भाषा, अस्माकं जननी—जैसे माता बिना पुत्र नहीं हो सकता, उसी प्रकार संस्कृत के बिना भारत-भारत नहीं रहेगा।

संस्कृत को पाठ्यक्रम से हटाने का सरकारी प्रयास वर्षों से चल रहा है। संस्कृत भारतीय संविधान में परिगणित भाषा है, शिक्षा शास्त्रियों ने भारतीय जीवन और संस्कृति में इसका स्थान देखते हुए, इसके पठन-पाठन पर विशेष ध्यान देने की संस्तुति बार-बार की है। उसी को माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम से हटाना देश को पूर्ण रूप से आत्मविमुख-आत्मद्रोही आतमघाती बनाने की दूरगामी दुरभिसन्धि है, जिसकी जड़े वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय लुटेरी-महत्वाकांक्षाओं से जुड़ी है। यद्यपि संस्कृत-प्रेमियों द्वारा उच्चतम न्यायलय में याचिका दायर करने पर माननीय न्यायायीशों ने शिक्षा विभाग पर अपने दु:संकल्प को लागू करने पर रोक लगा दी है, परन्तु शिक्षा विभाग अभी भी अपनी सर्वनाशी अभियोजना पर दृढ़ संकल्प है और संस्कृत को 20 प्रतिशत अंक देकर, उसे भारतीय भाषाओं का अंग बनाना चाहता है जो किसी स्वाभिमानी भारतीय को स्वीकार्य नहीं।

सरकार के अतिरिक्त, हम संस्कृत-प्रेमियों को स्वयं अपने हृदयों को टटोलना है कि हम संस्कृत.संवर्धन और उसकी सुरक्षा के लिए क्या कर रहे हैं। संस्कृत के बिना हमारी दैनिक स्तुति-प्रार्थना-उपासना और धार्मिक संस्कार कुछ भी नहीं हो सकते। हमारी आत्मा का विकास इसी देववाणी संस्कृत में निहित है। अत: आइये आज हम "संस्कृत-दिवस" पर संस्कृत पढ़ने और अपने बच्चों को संस्कृत पढ़ाने का संकल्प लें, तभी हम अपने को अपनी संस्कृति को समझ पाने योग्य बना पायेंगे।

(आर्यसन्देश, 13-9-89)

जो किसी देश की भाषा में वेदों का प्रकाश करता, तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता, उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने में होती। इसलिए संस्कृत ही प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है, उसी में वेदों का किया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

योगीराज श्रीकृष्ण

योगीराज कृष्ण एक ऐतिहासिक महापुरुष थे परन्तु उनके जीवन के साथ इतने पौराणिक आख्यान जुड़ गए हैं कि यह जान पाना कठिन हो गया है कि उनके जीवन व चरित्र से सम्बन्धित किन उपादानों का सत्य माना जाए। हम उन्हें वीर योद्धा, कूट-राजनीतिज्ञ और योगीराज मानें अथवा चोर जार शिखामणि। तथापि जो तथ्य उनके जीवन से सम्बन्धित प्राप्त हैं, उनके आधार पर उस महापुरुष के चरित्र का सही अर्थों में आकलन कठिन न होगा।

बचपन में श्रीकृष्ण आदर्श बलवान् थे। उस समय उन्होंने केवल शरीर बल से ही हिंसक जन्तुओं से वृन्दावन की रक्षा की थी और कंस के मल्लादि को भी मार गिराया था। गौ चराने के समय ग्वालों के साथ खेल-कूद और कसरत कर उन्होंने अपने शारीरिक बल की वृद्धि कर ली थी।

अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा मिलने पर वह क्षत्रिय समाज में सर्वश्रेष्ठ वीर थे। उन्हें कभी कोई परास्त न कर सका। कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि तत्कालीन प्रधान योद्धाओं से तथा काशी, कलिंग, गांधार आदि राजाओं से वे लड़े और सब को उन्होंने हराया। सात्यकि और अभिमन्यु उनके शिष्य थे। वे दोनों भी सहज हारने वाले न थे। स्वयम् अर्जुन ने भी युद्ध की बारीकियाँ उन से सीखी थीं।

केवल शारीरिक बल और शिक्षा पर जो रणपटुता निर्भर है, वह सामान्य सैनिक में भी हो सकती है। सेनापतित्व ही योद्धा का वास्तविक गुण है। महाभारत में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त एक भी अच्छे सेनापति का पता नहीं लगता। श्रीकृष्ण के सेनापतित्व का विशेष परिचय जरासंध युद्ध में मिलता है। उन्होंने अपनी मुट्ठी भर यादव सेना से जरासंध का सामना करना असाध्य समझ कर मथुरा छोड़ना, नया नगर बसाने के लिए द्वारिका द्वीप का चुनना और उसके सामने की रैवतक पर्वत माला में दुर्भेद्य-दुर्ग निर्माण करना जिस रणनीति का परिचायक है, वह उस समय के और किसी क्षत्रिय में नहीं देखी जाती है।

कृष्ण की ज्ञानार्जनी वृत्तियां सब ही विकास की पराकाष्ठा को पहुंची हुई थीं। वे अद्वितीय वेदज्ञ थे। भीष्म ने उन्हें अर्घ प्रदान करने का एक कारण यह भी बताया था।

कृष्ण ने प्रतिपादित उन्नत, सर्वलोक हितकारी सब लोगों के आचरण योग्य धर्म का प्रसार किया।

गीता कृष्ण की अनुपम देन है।

श्रीकृष्ण मन से श्रेष्ठ और मानवीय राजनीतिज्ञ थे। इसी से युधिष्ठिर ने

वेदव्यास के कहने पर भी श्रीकृष्ण से परामर्श बिना राजसूय यज्ञ में हाथ नहीं लगाया। स्वेच्छाचारी यादव और कृष्ण की आज्ञा में चलने वाले पाण्डव दोनों ही उनसे पूछे बिना कुछ नहीं करते थे। जरासंध को मारकर उसकी कद से राजाओं को छुड़ाना उन्नत राजनीति का अति सुन्दर उदाहरण है। यह साम्राज्य स्थापना का बड़ा सहज और परमोचित उपाय है। धर्म राज्य स्थापना के पश्चात् उसके शासन के हेतु भीष्म से राज्य व्यवस्था ठीक कराना राजनीतिज्ञता का दूसरा बड़ा प्रशंसनीय उदाहरण है।

कृष्ण की सब कार्यकारिणी वृत्तियाँ चरम सीमा तक विकसित हुई थीं। उनका साहस, उनकी फुर्ती और तत्परता अलौकिक थीं। उनका धर्म तथा सत्यता अचल थी। स्थान-स्थान पर उनके शौर्य, दयालुता और प्रीति का वर्णन मिलता है। वे शान्ति के लिए दृढ़ता के साथ प्रयत्न करते थे और इसके लिए वे दृढ़-प्रतिज्ञ थे। वे सबके हितैषी थे। केवल मनुष्यों पर ही नहीं गोवत्सादि जीव जन्तुओं पर भी वह दया करते थे। स्वजन प्रिय थे। परलोक हित के लिए दुष्टाचारी स्वजनों का विनाश करने में कुँठित नहीं होते थे। कंस उसका मामा था। शिशुपाल उनकी फूफी का बेटा था। उन्होंने मामा और भाई का लिहाज न कर दोनों को ही दण्ड दिया। जब यादव लोग सुरापायी हो उद्दण्ड हो गए थे। उन्होंने उनको भी अछूता न छोड़ा।

श्रीकृष्ण अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय, दृढ़कर्मी, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील, निर्भय, निरहंकार, योगी और तपस्वी थे। वे मानुषी शक्ति से काम करते थे परन्तु उनमें देवत्व अधिक था।

(आर्यसन्देश, 20-8-89)

श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उसका गुण, कर्म, स्वभाव, और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन

पिछले दिनों भारत सरकार ने पंचायती राज विधेयक पारित करके शासन सत्ता में स्थानीय लोगों को भागीदार बनाया है। यह विचारणा कोई नई नहीं है। इस विचारणा के सूत्र प्राचीन भारतीय शासन परम्परा में उपलब्ध हैं। इसी विषय को लेकर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति और पुरातत्त्व विभाग के तत्त्वावधान में 11, 12, 13 और 14 अक्तूबर 1987 को एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया था। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्वानों ने भाग लिया और अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। इस संगोष्ठी में जो प्रवन्ध पड़े गए, उनका संकलन गुरुकुल पत्रिका के सम्पादक प्रो० जयदेव वेदालंकार ने मासिक शोध पत्रिका के दो अंको वर्ष 39 और 40 में पाठकों लाभार्थ प्रस्तुत किया है।

इस संकलन में 'वैदिक युग में ग्राम स्वशासन' पर गोरखपुर विश्वविद्यालय के डा० विजय बहादुर राव का लेख संकलित है जिसमें उन्होंने ग्राम, ग्रामणी, ग्राम्य वादिन सभा, सभागार, सभासद आदि शब्दों के आधार पर और प्राप्य तथ्यों के आधार पर ग्राम्य स्वशासन की संकल्पना को मूर्त्त आधार प्रदान किया है। उनकी स्थापना है कि वैदिक ग्रामों का स्वरूप प्राय: आत्म निर्भर आर्थिक एवं प्रशासनिक इकाई का था। इन्हीं शब्दों के उल्लेख एवं अभिप्रेतार्थ का विवेचन, परवर्ती कालों के परिप्रेक्ष्य में भी उन्होंने सम्यक्रूपेण प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त हड़प्पा संस्कृति में स्वशासन व्यवस्था, मौर्यकालीन ग्राम्य शासन व्यवस्था, वानर स्वशासन में धर्म, आचार एवं संगठन आदि महत्त्वपूर्ण विषयों को भी स्थान दिया है। उस समय भी शासन व्यवस्था धर्मानुकूल थी, यह बात बार-बार दुहराई गई है। जम्मू-काशमीर विश्वविद्यालय के डॉ० वाई० बी० सिंह ने अपने आलेख का केन्द्र विन्दु पुरोहित संघ को बनाया है। उनकी विचारणा का मूलाधार भी यही है कि स्थानीय निकायों में पुरोहितों एवं धर्माचार्यों का विशेष स्थान था।

इसी पत्रिका के दूसरे खण्ड में प्राचीन भारत में न्याय व्यवस्था और अन्य आलेखों को सम्मिलित किया गया है। गढ़वाल विश्वविद्यालय के प्रो० मृगेन्द्र कुमार सिंह ने ब्राह्मण दार्शनिकों के जीवन दर्शन को व्याख्यायित करके उन्हें मूर्धन्य स्थान प्रदान किया है। उन्होंने ब्राह्मणों को दार्शनिक माना है। डा० राकेशकुमार शर्मा ने एक शोधपूर्ण लेख में वर्ण परंपरा में गुप्त लोगों का स्थान निर्धारण करने का सफल प्रयास किया है। गुप्त वैश्व थे, गुप्त ब्राह्मण शूद्र थे, गुप्त क्षत्रिय थे—इन चारों मान्यताओं के पोषक उपादानों की उन्होंने तार्किक विवेचना की है। उन्होंने यह

निष्कर्ष दिया है कि गुप्त क्षत्रिय थे।

यह सनातन नियम है कि आज सदैव अतीत से प्रेरणा लेता है। आज जो नवीन है उसके बीज अतीत में सदैव प्राप्य हैं। ये बीज ही पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं और पुनः बीज में परिवर्तित हो जाते हैं। यही बात ज्ञान-विज्ञान के विषय में भी उतनी ही सही है। वह था, वह है और वह होगा। तत् सत्। जो इस अभिप्रेत को जान लेता है। वही ऋषि है, वही आज की भाषा में वैज्ञानिक अथवा अनुसंधान है, वह नवविचारों को संवाहक है स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी ये सभी धारणाएं पुरातन युगीन हैं। इनका आधुनिक संस्कार प्राचीन परम्परा में है। वह पराम्परा सभी आर्य ग्रन्थों में आप्यायित है।

(आर्य सन्देश, 27-8-89)

जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं, तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं, तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

धर्मान्तरण एवं शादी

हमारे समाज के सम्मुख धर्मान्तरण की समस्या मुँह बाए खड़ी है। धर्मान्तरण के कई उद्देश्य होते हैं, सामाजिक समानता प्राप्त करना, धर्मान्तरण का एक मुख्य उद्देश्य है। कहा जाता है कि ईसाई, मुस्लिम अथवा बौद्ध धर्म में कोई बड़ा छोटा नहीं होता। वहां पर सभी लोग एक समान होते हैं। उनके समान अधिकार होते हैं। सामाजिक कार्यों में सभी की समान भागीदारी होती है। शादी-विवाह में अथवा त्योहारों में कोई बड़ा छोटा नहीं होता। सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचारों से तंग आकर हरिजन अपना धर्म बदल लेते हैं। आदिवासी भी अपना धर्म बदल लेते हैं। उनके पास अच्छा जीवन जीने का एक ऐसा इन्द्रजाल मौलवियों अथवा पादरियों द्वारा बिछाया जाता है कि वे सम्मोहित हो जाते है।

परन्तु पिछले दिनों एक नई बात सामने आई है कि एक व्यक्ति केवल शादी करने के लिए धर्म बदल लेता है। क्या किसी व्यक्ति को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वह केवल शादी करने के लिए इस्लाम धर्म को कबूल कर ले। दिल्ली की एक अदालत के सामने ऐसा ही मामला आया। एडीशनल सेशन जज जे. डी कपूर ने कहा कि ऐसे मामले में परिस्थितियाँ और उद्देश्य एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें यह बात जरूर ध्यान में रखी जानी चाहिए कि कहीं व्यक्ति केवल दूसरी शादी करने के लिए ही तो धर्म परिवर्तन नहीं कर रहा है। जो व्यक्ति सही मन से धर्म परिवर्तन करता है, उसका मन साफ और विश्वास अडिग होता है, परन्तु जो किसी लोभ अथवा कामासक्ति के कारण ऐसा करता है, उसका मन साफ नहीं होता। मौलवियों और पादरियों को धर्म परिवर्तन कराते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।

जावेद ख़ां की पत्नी पूजा खन्ना ने शिकायत दर्ज की थी कि उसके पति ने बिना उससे तलाक लिए दूसरी शादी कर ली है। जावेद खां ने पुनरीक्षण याचिका दायर की और कहा कि उसे उसके धर्म के अनुसार चार शादियाँ करने का अधिकार है। जावेद खां का पहला नाम जय शर्मा था। उसकी और पूजा खन्ना की शादी अप्रैल 1983 में हिन्दू रीति से हुई थी। शादी के एक वर्ष बाद सम्बन्ध टूट गए। उसने इस्लाम धर्म अपना लिया और अपना नाम बदल कर जावेद खान रख लिया। आगे चल कर उसने एक लड़की रजनी आहूजा से शादी कर ली। रजनी आहूजा ने भी इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और अपना नाम सईदा रख लिया। पूजा खन्ना का तर्क यह है कि जय शर्मा ने बिना उससे तलाक लिए, केवल रजनी से शादी करने के लिए

धर्म परिवर्तन किया है। न्यायमूर्ति ने इस मामले पर गंभीरता पूर्वक विचार करके जावेद खान की पुनरीक्षण याचिका निरस्त कर दी और पूजा खन्ना की याचिका पर अभी विचार किया जाना है।

यह विषय मानव-शास्त्रियों, समाज शास्त्रियों तथा धर्माध्यक्षों के लिए विशेष ध्यान की अपेक्षा करता है। जहां पर मात्र उद्देश्य विवाह हो क्या वहाँ पर धर्मान्तरण किया जाना चाहिए। सम्बन्धित लोगों को इस पर गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिए।

(आर्य सन्देश 3-9-89)

गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर, गुरुकुल से अनुक्रम पूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षण युक्त कन्या से विवाह करे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

—०—

अजातशत्रु पं. शिवकुमार हमारे बीच नहीं रहे

यह वाक्य कितना हृदय विदारक हो सकता है, पाठक सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। दिल्ली के पाठक ही नहीं, सम्पूर्ण भारत के पाठक, अन्य देशों के वे लोग जो आर्यसमाज में रुचि रखते हैं, पं० शिवकुमार शास्त्री के नाम से परिचित हैं। पं० जी की भाषण कला अपने आप में अनूठी थी। वे अपने विषय का प्रतिपादन सरस शैली में किया करते थे। वे अद्वितीय विद्वान् थे। वेदों के अनुपम व्याख्याता थे। आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे, दिल्ली में ही नहीं सर्वत्र आर्यसमाजों के मंचों की शोभा थे। उनकी डायरी में महीनों पहले प्रविष्टि हो जाया करती थी, पर फिर भी वे स्वभावतः विनीत और सरल थे। "श्रुति सौरभ" उनकी अमर कृति है। उसके प्राक्कथन में उन्होंने लिखा था—मैं कभी न प्रखर वक्ता समझा गया हूं और न गम्भीर विद्वान्। ऐसे विनम्र थे हमारे पं० शिवकुमार जी शास्त्री। दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा तालकटोरा में आयोजित महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह में उन्हें कहा गया कि जब तक मुख्य अतिथि महामहिम राष्ट्रपति जी आयें, तब तक उन्हें ही अपना भाषण जारी रखना है और वह उद्भट सहर्ष इस कठिन कार्य का निर्वाह, अपनी सुपरिचित सरस, सरल एवं प्रवाहपूर्ण शैली में करता रहा। उनकी वक्तृता को हजारों लोग मन्त्रमुग्ध हो सुनते रहे। ऐसा विद्वत्ता और वाग्मिता का अपूर्व सम्मिश्रण उनके व्यक्तित्व में आप्यापित था। औदार्य, सहृदयता, अनुशासनप्रियता, व्यवहार-शुचिता आदि गुणों से विभूषित शास्त्री जी स्पृहणीय मानव थे। उनके सम्पर्क में जो भी आया, वह उनका हो गया। इस वर्ष हमारे एक समारोह में उपराष्ट्रपति पं० शंकर दयाल शर्मा आए। वे उनकी वक्तृता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अस्वस्थ होते हुए भी सभी कार्यकर्त्ताओं को उन्हें लाने के लिए अपनी बधाई भेजी।

पं० शिवकुमार शास्त्री का जन्म 15 अक्तूबर 1915 को ग्राम आर्यनगर पो० आ० शाहपुर जि० अलीगढ़ में हुआ। आठ वर्ष की आयु में पं० धुरेन्द्र शास्त्री ने उनका उपनयन कराया और वे सर्वदानन्द साधु आश्रम में प्रविष्ट हुए। बाद में वे गुरुकुल महाविद्यालय सूर्यकुण्ड बदायूं में प्रविष्ट हुए। 1934 में वहीं से विद्याभूषण की उपाधि लेकर स्नातक हुए। इसके बाद उन्होंने नित्यानन्द वेदविद्यालय वाराणसी, और क्वींस कालेज वाराणसी में अध्ययन किया और 'शास्त्री', 'काव्यतीर्थ' तथा 'व्याकरणतीर्थ' की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

सन् 1937 से 44 तक वे गुरुकुल धाम जेहलम पंजाब में आचार्य रहे। 1945 से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में महोपदेशक रहे। सन् 1950 से 1963 तक उन्होंने पंजाब सभा की ओर से दिल्ली में वेदप्रचार अधिष्ठाता का दक्षतापूर्वक दायित्व

निभाया। 1964 से 1967 तक वे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में मुख्याधिष्ठाता रहे। 1967 से 1976 तक वे चौथी और पांचवीं लोकसभा के सदस्य भी रहे। 1970 से 74 तक वे गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के कुलपति भी रहे। सार्वदेशिक सभा के अन्तरंग सदस्य वे लम्बे समय से रहे हैं। वे धर्मार्य सभा तथा दयानन्द पुरस्कार समिति के भी सदस्य रहे हैं। वे 1974-75 में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे।

उनकी विद्वता के फलस्वरूप उन्हें दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा तथा हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा ने समय-समय पर सम्मानित किया। आर्यसमाज दीवान हाल, लाजपत नगर, सदर बाजार तथा हनुमान रोड में भी उन्हें सम्मानित किया गया।

वह अजातशत्रु विद्वान् रविवार 3 सितम्बर 1989 को अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर अनन्त में विलीन हो गए।

(आर्य सन्देश 10-9-89)

जब उत्तम-उत्तम उपदेश होते हैं, तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते, तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं, तभी अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

सुप्रसिद्ध इतिहासकार, लेखनी के धनी, वैदिक विद्वान् डा० सत्यकेतु विद्यालंकार

भारतीय पुनर्जागरण में आर्यसमाज का योगदान अद्वितीय है आर्यसमाज ने उसे एक विशिष्ट संबल एवं प्रवल प्रवाह प्रदान किया। समाज सुधार एवं जन जागरण करने में इस आन्दोलन का स्थान सदैव स्मरणीय रहेगा, क्योंकि यह आंदोलन क्रांति का तो है, पर यह अपनी परम्पराओं से सुसम्पृक्त है। इसकी विचारधारा में वैदिक विचारणा तथा सांस्कृतिक मनीषा अनुस्यूत है। प्राचीन वैदिक ज्ञान को पुन: प्रचलित करने में इसने विशेष कार्य किया और इसका साक्षात् प्रमाण एवं अभिनव रूप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय है। इस संस्था में वेद के पारंगत विद्वानों को तो संरक्षण मिला ही, आयुर्वेद एवं अन्यान्य वैदिक विद्याओं एवं उनके स्वरूपों को भी संरक्षित करने का तथा संरचित करने का श्लाध्य प्रयास यहाँ हुआ है। इसी परम्परा के संवाहक डा० सत्यकेतु विद्यालंकार थे। वे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के समय में ही गुरुकुल में प्रविष्ट में हुए थं। यह संयोग ही है कि जहां से इस मनीषी विचारक ने अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ की थी, वहीं पर उनकी ऐहिक जीवन लीला समाप्त भी हुई।

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध इतिहासकार, वैदिक विद्वान् एवं विख्यात साहित्यकार डा० सत्यकेतु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे गुरुकुल कांगड़ी में छात्र रहे, प्राध्यापक रहे, विभागाध्यक्ष रहे, कुलपति रहे तथा संस्था के सर्वोच्च अधिकारी कुलाधिपति भी रहे। गुरुकुल के विषय में उनका अपना एक स्वप्न था। कि यह संस्था प्राच्यविधाओं के शोधसंस्थान के रूप में उच्चतम स्थान प्राप्त करे। वे आजीवन इसके लिए प्रयत्नशील रहे।

डा० सत्यकेतु का जन्म 19 सितम्बर 1903 को गाँव आलमपुर, पोस्ट आफिस रामपुर, जिला सहारनपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। वे गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक तथा पेरिस से डी० लिट थे। उनका निधन 16 मार्च 1989 को गुरुकुल कांगड़ी जाते समय सड़क दुर्घटना में हुआ। उनके सुदीर्घ जीवन की अनेक झांकियां, मनोरम पृष्ठ इस विशेषांक में संगृहीत हैं। अधिकारी विद्वानों ने उनके जीवन, व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं कृतित्व के विषय में लेख लिखे हैं कुछ लेख देर से मिले जिन्हें हम इस अंक में सम्मिलित नहीं कर पाए। कुछ लेख अत्यधिक लंबे थे, जिन्हें सम्पादित करके छोटा करना पड़ा। कुछ लेखकों के संस्मरणों में पुनरावृत्तियां थीं, उनको हटा दिया गया। उसी मनीषी के लिए, आत्मीयों द्वारा लिखी किसी भी पंक्ति को छोड़ना हमारे लिए दुष्कर कार्य था।

इस स्मृति अंक को हमने चार भागों में बांटा है—(1) श्रद्धासुमन और संस्मरण, (2) जीवन वृत्त, (3) आर्यसमाज का इतिहास-सात खंडों में लिखे उनके इतिहास का सामान्य परिचय एवं मूल्यांकन, (4) इतिहास, राजनीति, धर्म, दर्शन तथा साहित्य संबंधी उनकी कृतियों पर आधृत शोधलेख। हम उन सभी विद्वानों का धन्यवाद करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते हैं, जिन्होंने अपने लेखादि भेजकर हमें सहयोग दिया है।

डा० सत्यकेतु विद्यालंकार को अनेक संस्थाओं की ओर से सम्मानित किया गया था। मंगलाप्रसाद पारितोषिक, पं० मोतीलाल नेहरू पुरस्कार, पं० गोविन्द वल्लभ पन्त पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली पुरस्कार, आर्यसमाजों व शिक्षा-संस्थाओं द्वारा प्रदत्त अनेक पुरस्कार, उन्हें प्राप्त हुए थे। हमारी हार्दिक इच्छा थी कि इन पुरस्कारों के समय के चित्रों तथा अभिनन्दन पत्रों को हम अविकल रूप से प्रकाशित करें, परंतु यह सम्भव न हो सका। उनके ये चित्र और सभी अवसरों के प्रशस्ति पत्र हमें मिल न सके। अधूरी बातें लिखना हमें अच्छा नहीं लगा। गुरुकुल कांगड़ी में कुछ विवरण एवं चित्र उपलब्ध हैं जो उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्य को आभावान् बनाते हैं। हमारा प्रयास रहेगा कि भविष्य में उनके विषय में अधिक शोध किए जाएँ और उन्हें प्रकाशित तथा प्रचतारित किया जाए।

डा० साहब के जीवन के कुछ आयामों को इस विशेषांक में सम्मिलित नहीं किया जा सका। वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य थे। उन्होंने कुछ कृतियों के अनुवाद किए थे। वे कुछ समय पत्रकार भी रहे थे। उन्होंने अनेक यात्राएं की थीं। उन्होंने यायावर साहित्य का सृजन किया था। ये उनके जीवन के ऐसे उज्ज्वल पक्ष थे, जिनके विषय में शोधसामग्री देना हमारा कर्त्तव्य था। तथापि हमने अपनी ओर से उस महान् व्यक्ति की स्मृति में श्रद्धा और अर्चना के साथ इस अंक का प्रकाशन किया है। इस अंक का प्रकाशन करके हम स्वयं को गौरवान्वित भी महसूस करते हैं। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि डा० सत्यकेतु जैसे देदीप्यमान नक्षत्र का नाम हमारे पत्र के साथ जुड़ा है।

उस आर्य, मनीषी, गवेषक, इतिहासकार, साहित्यकार अनथक कार्यकर्त्ता एवं सफल प्रशासक को हमारे श्रद्धासुमन अर्पित हैं।

(आर्यसन्देश 17-24-9-89)

महात्मा गांधी और मद्य निषेध

आर्यसमाज अपने प्रारम्भिक काल से ही शराब खोरी को बन्द करने का पक्षधर रहा है। शराब बन्दी के लिए आर्यसमाज ने सदा से ही आंदोलन भी चलाए हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में राजधर्म विषयक छठे समुल्लास में राजा और सभासदों को जिन व्यसनों से बचने के लिए कहा है, उनमें से एक प्रमुख व्यसन है—मद्यपान और मादक द्रव्यों का सेवन। स्वामी जी ने मादक द्रव्यों व्याख्या करते हुए लिखा है—'बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते। जिसके सेवन से बुद्धि नष्ट होती है, वह वस्तु मादक है।' स्वामी जी ने आर्यों के चक्रवर्ती साम्राज्य के समाप्त होने का एक प्रमुख कारण मद्य-मांस का सेवन माना है। यादवों का नाश का कारण वे मद्यपान मानते हैं।

आर्यसमाज सदा से ही मद्यनिषेध का प्रचारक रहा है। महर्षि दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी के अवसर पर आर्यसमाज ने नशा-निवारण का अभियान चलाया था। इसमें शराब के साथ-साथ अन्य मादक द्रव्यों पर भी रोक लगाने की बात कही गयी थी। उस समय आयोजित नशाबन्दी सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव भी पारित किए गए थे। इस समस्या का समाधान आसान नहीं है। यह सामान्य नियम है कि अच्छाई की तरफ कम और बुराई की ओर अधिक जाते हैं। हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा कई वर्षों से मद्यनिषेध आन्दोलन चला रही है। आर्य प्रतिनिधि सभा की शताब्दी के आयोजन के अवसर पर व्यसन-मुक्ति सम्मेलन भी किया गया था। उन्हें कुछ सफलता भी मिली है, परन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उत्तर भारत के किसी भी प्रान्त की अपेक्षा मद्य की खपत का अनुपात हरियाणा में सर्वाधिक है। अभी पिछले दिनों चौबीसी महम से एक पदयात्रा का आयोजन भी किया गया। आयोजकों के पवित्र उद्देश्य में सामाजिक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध संस्थाओं ने सहयोग भी दिया। इस पदयात्रा का समापन बोट क्लब पर एक विशाल रैली के साथ हुआ। राष्ट्रपति को एक ज्ञापन भी दिया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा भी इस दिशा में सदैव प्रयत्नशील रही है। सभाप्रधान स्वामी आनन्द बोध सरस्वती इस लत के कारण बहुत चिन्तित हैं। यदि विदेशों में ओलम्पिक्स में अथवा अन्य प्रतियोगिताओं में भारतीय खिलाड़ी किसी प्रकार के पदक प्राप्त करने में असफल होते हैं तो इसका कारण भी मद्यपान और अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन ही है और स्वामी जी इसके लिए अनेक बार अपना रोष, आक्रोश एवं दुःख प्रकट कर चुके हैं। सरकार इस दिशा में बिल्कुल आँखें मूंदे हुए हैं। उन्हें राजस्व चाहिए, देश कहीं भी जाए। पिछले दिनों स्वामी जी महाराज

ने आर्य जगत् को एक त्रिसूत्री कार्यक्रम दिया है—गोवध बन्द करो, अंग्रेजी हटाओ तथा शराब के ठेके उठाओ। ये तीनों ही सूत्र बहुत ही प्रासंगिक हैं तथा देश-विदेश की सभी सभाओं, आर्यसमाजों तथा समान विचारधारा वाले अन्य संगठनों ने इनका स्वागत किया है तथा पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया है। युवा शक्ति की रक्षा के इन तीनों सूत्रों की परिपालना अत्यन्त आवश्यक है। आर्यसमाजों तथा अन्य संस्थाओं में इन सूत्रों को लेकर कार्यक्रम प्रारम्भ भी हो गये हैं सभाओं के अखबारों में इन विषयों पर लेख लिखे जा रहे हैं, आर्यसमाजों में समारोह किए जा रहे। अभी दिल्ली में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर पर सर्वाधिक प्रखर स्वर यही था कि अंग्रेजी हटाओ। नवम्बर मास में एक रैली का आयोजन किया जायेगा, जिसका उद्देश्य होगा—गोरक्षा करो। वास्तव में जन चेतना किसी भी आन्दोलन की रीढ़ होती है और आर्यसमाज यही कर रहा है। यदि लोग समय रहते चेत जाएं तो सब ठीक हो जायेगा, अन्यथा इस जाति का नाश सुनिश्चित है।

हमने इस लेख का शीर्षक "महात्मा गाँधी और मद्यनिषेध" दिया है। महात्मा गांधी की कुछ बातों का क्या अर्थ लिया जाए यह विचारणीय है। जैसे कि—'मुझसे पूछा जाता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर मैंने अपना मुंह क्यों बन्द कर लिया। मैंने तो कहा कि यह सवाल मेरे हाथ से निकल गया और अब वह खुदा के हाथ में है। जहां स्वामी श्रद्धानन्द जैसे व्यक्ति की हत्या हो सकती है, वहाँ हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात कैसे सुनाऊं? मुसलमानों के ऐसे झगड़े देखकर मैं थक गया। यदि कोई आदमी ये झगड़े मिटाने के लिए अपना जीवन खर्च करता था, तो वह मैं ही था। परन्तु मेरे प्रयत्नों का फल दिखाई नहीं दिया। मैंने तो सब्र कर लिया और खुदा पर भार डाल कर बैठ गया।' ये वाक्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के हैं। जिस व्यक्ति के इशारे से सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों लोग चल पड़ते थे, वह धार्मिक सहिष्णुता के मामले में कितना असहाय हो गया था।

उनकी असहायता की यही बात शराब बन्दी के विषय में भी सही है। महर्षि दयानन्द तो मानते थे कि शराब मनुष्य को राक्षस बना देती है। यह बात गाँधी जी भी कहते थे कि सस्ते मनोरंजन के लिए मजदूर नैतिक पतन करने वाले सिनेमागृहों, शराब की दुकानों और वेश्यालयों की शरण लेते हैं तथा उनकी उदात्त भावनाएं मर जाती हैं। गाँधी जी भी शराब का पूर्ण निषेध चाहते थे। उनका कहना था—'यदि मुझे एक घण्टे के लिए भारत का डिक्टेटर बना दिया जाए, तो मेरा पहला काम यह होगा कि शराब की दुकानों को बिना मुआवजा दिए बन्द करवा दिया जाए। हाय रे दुर्भाग्य—आज गाँधी के नाम पर वोट बटोरने वाले शराब को हटाने की बजाय, बढ़ा रहे हैं। महात्मा गाँधी की आत्मा को वे कैसा दण्ड दे रहे हैं। गांधी जी ने यह भी कहा था—'हमें इस दलील के भूलावे में नहीं आना चाहिए कि शराब बन्दी जोर जबरदस्ती के आधार पर नहीं होनी चाहिए और लोग शराब पीना चाहते हैं, उन्हें उसकी सुविधाएँ मिलनी चाहिएं। राज्य का यह कोई कर्त्तव्य नहीं कि वह अपनी प्रजा की कुटेवों के लिए अपनी ओर से सुविधाएं दें। मैं भारत का गरीब

होना पसन्द करूँगा लेकिन मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि हमारे हजारों लोग शराबी हों।' महात्मा गाँधी यह जानते थे कि राजस्व प्राप्ति की बात आगे चलकर आएगी, पर दुःख इस बात का है कि गाँधी की बात भी किसी ने नहीं सुनी।

महात्मा गाँधी ने बीड़ी और सिगरेट का भी इसी प्रकार विरोध किया था—'शराब की तरह बीड़ी और सिगरेट के लिए भी मेरे मन में गहरा तिरस्कार है। बीड़ी और सिगरेट को मैं कुटेव मानता हूं। यह मनुष्य की विवेक बुद्धि को जड़ बना देती है।'

महात्मा गाँधी गोरक्षा के भी प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कहा था—गोरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकास क्रम में सबसे अलौकिक वस्तु मालूम हुई है।' अंग्रेजी खीखने के विचारहीन मोह से भी मुक्ति चाहते थे। इन विषयों पर फिर कभी लिखा जाएगा।

महात्मा गांधी का जन्मदिन 2 अक्तूबर है। सारे देश में उनकी जयन्ती मनाई जाएगी, सभी सरकारी कार्यालयों में छुट्टियां भी रहेंगी, विद्यालय भी वन्द रहेंगे। हम नहीं जानते कि गाँधी जी का सच्चा स्मरण कितनों को होगा। यदि हम वास्तव में देश को समुन्नत देखना चाहते हैं, तो शराब को एकदम बन्द किया ही जाना चाहिए। आर्यसमाज के त्रिसूत्री आन्दोलन का यह एक भाग है। सभी आर्यजनों को चाहिए कि वे इस विषय में प्रबल चेतना जागृत करें और सार्वदेशिक सभा के आह्वान पर इस कार्यक्रम को पूर्ण निष्ठा के साथ क्रियान्वित करें।

(आर्य संदेश, 1-10-89)

जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले, पदार्थ हैं, उनका सेवन कभी न करे, जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

श्याम जी कृष्ण वर्मा

अमर हुतात्मा श्याम जी कृष्ण वर्मा महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य शिष्य थे। वे संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे। धारावाहिक प्रवाह पूर्ण शैली में संस्कृत में अभिभाषण करने वाले उस महान् व्यक्ति का नाम भारत के गौरवमय संघर्ष पूर्ण इतिहास में सदैव स्मरण किया जाएगा। भारत की स्वाधीनता के लिए जो संग्राम 1857 में प्रारम्भ हुआ था, जिसकी कड़ी के भाग थे—सन्यासी विद्रोह, कूका विद्रोह और क्राँतिकारी आन्दोलन, उसी बलिदानी कड़ी में श्याम जी कृष्ण वर्मा का भी नाम है।

श्याम जी कृष्ण वर्मा का जन्म 4 अक्तूबर 1857 को गुजरात के कच्छ जिले के माण्डवी नामक ग्राम में हुआ था। 12 वर्ष की आयु में एक संन्यासिनी की सेवा करते हुए, उनकी प्रेरणा से उन्होंने संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। बाद में बम्बई के सेठ मथुरादास भाटिया उनके संस्कृत ज्ञान एवं जिज्ञासु प्रवृत्ति से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपने व्यय पर बम्बई के विल्सन हाई स्कूल में प्रवेश दिला दिया। हाई स्कूल परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर 18 वर्ष की वय में सेठ छबीलदास ने अपनी सुपुत्री का विवाह उनसे कर दिया।

1874-75 में महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाषणों की बम्बई में धूम मची थी। उनके विद्वता एवं पण्डित्य से परिपूर्ण अकाट्य तर्कों पर आधारित भाषणों का सर्वत्र प्रभाव था। श्याम जी कृष्ण वर्मा उनके दर्शनों के लिए वहां गए और उनके विलक्षण व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि वहीं उनके शिष्य बन गए। स्वामी जी महाराज से उन्हें आपार स्नेह एवं प्रेरणा मिली। वेदों के स्वाध्याय में उनकी प्रवृत्ति हुई 1877 से 1878 तक आर्यसमाज के प्रचारक रहे। 1878 में ओक्स फोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष सर मोनियर विलियम भारत आए वे श्याम जी जो कृष्ण वर्मा के संस्कृत अभिभाषणों से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्हें आक्स-फोर्ड विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर नियुक्त कर लिया। महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य श्याम जी इंग्लैंड पहुंचे और वहाँ से जो उनका जीवन प्रारम्भ हुआ, वह क्रांति-कारिता का जीवन था। महर्षि दयानन्द ने अपने होनहार शिष्य को स्वराज्य व स्वधर्म हेतु कार्य करने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने इंग्लैंड में जाकर ब्रिटिश साम्राज्य-वादी शक्ति से उसके घर में घुस कर लोहा लेने का निश्चय किया। उन्होंने 'इंडियन सोश्योलिस्ट पत्रिका' और 'द इण्डियन होमरूल सोसायटी' के माध्यम से अपना कार्य प्रारम्भ किया। भारतीय छात्रों के हित के लिये 'इंडियन हाउस' की स्थापना की जो आगे चलकर क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बना। उनकी प्रेरणा से वीर सावरकर

ने 'स्वातन्त्र्य समर' पर एक पुस्तक लिखी जो क्रांतिकारियों की गीता के नाम से प्रसिद्ध हुई। वीर सावरकर के अतिरिक्त क्रांतिवीर मदनलाल धींगड़ा भी इण्डियन हाउस के देदीप्यमान सितारे थे। मार्च 1930 में उस वीर का देहान्त हो गया। उस वीर को हम सदैव स्मरण करेंगे जो आजादी की अलख जगता हुआ, अन्याय शोषण, पराधीनता-बन्धन, अन्धविश्वासों के विरुद्ध सदैव प्रयत्नशील रहा।

उस कर्मठ महामानव के लिये हमारी श्रद्धांजलि।

(आर्यसंदेश 8-10-89)

जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ाने हारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकार प्रिय, पुरुषार्थी, उदार' विद्याधर्म की निरन्तर उन्नति करने हारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दास्तुति में हर्ष शोक रहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिकर्म वेदा ज्ञा ईश्वर के गुण कर्म स्वभावानुकूल करने हारे, न्याय को रीतियुक्त। पक्षपात रहित, सत्योपदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने हारे के परीक्षक, किसी की लल्लो पत्तो न करें प्रश्नों के यथार्थ सभाधान कर्त्ता, अपने आत्मा के समान अन्यका भी सुख दुःख समझने वाले हैं, वे सुपात्र होते हैं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

विजय दशमी का पर्व

विजयदशमी का पर्व विजय एवं उल्लास का पर्व है। यह कहा जाता है कि इस दिन राम की रावण पर विजय हुई थी। सद्वृत्तियों की विजय दुर्वृत्तियों पर हुई थी। राक्षसों पर देवताओं की विजय हुई थी। असत्य पर सत्य की विजय हुई थी। अधर्म पर धर्म की विजय हुई थी। हमारे धार्मिक आख्यानों में ऐसे अनेक वृत्तान्त आते हैं जो इस विचारणा को रूपायित करते हैं—कि अन्याय कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, अन्तिम विजय सदैव न्याय की होती है। रामायण और महाभारत के प्रसंग तो भारतीय जनता के मानस में रचे-बसे हैं। राम की लीलाएं सर्वत्र की जाती हैं। नाटकों तथा चलचित्रों के माध्यम से उन्हें प्रदर्शित किया जाता है। आजकल दूरदर्शन पर भी प्रदर्शित किया जा रहा है। आर्यसमाज का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही भोण्डे प्रदर्शन के विपरीत रहा है। आर्यसमाज सात्त्विकता का पक्षधर है। हम उस मर्यादा पुरुषोत्तम राम का स्मरण करते हैं जो इस संसार के पुरुषों में महापुरुष है। जो अपने जीवन में मर्यादाओं का कहीं भी उल्लंघन नहीं करता। जो शक्ति, शील एवं सौन्दर्य का साक्षात् रूप है।

वह भगवान् राम राक्षसराज रावण पर विजय प्राप्त करते है। निष्ठावान् श्रद्धालु भक्त अपनी आराधना के क्षणों में उन प्रगों को अपनी अभिन्न प्रतिभा से जीवित करते हैं। ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग इन लीलाओं से जुड़े हैं जो जनमानस को उद्वेलित करते हैं। उनके हृदय में प्रसन्नता शोक, क्रोध, शौर्य, शान्ति के भावों को जागृत करते हैं। अन्तिम परिणति शान्ति में होती है। यही मानव जीवन का लक्ष्य भी है।

ये पर्व हमारे लिए संकल्प के दिवस होते हैं। आओ हम सब मिलकर संकल्प करें—कि हम अन्धविश्वास, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपनी लड़ाई आजीवन जारी रखेंगे, सत्य की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहेंगे, विश्व और राष्ट्र में शान्ति और एकता-अखण्डता के लिए प्रयास करेंगे। संसार से मद्यादि दुर्व्यसनों को दूर करेंगे। हमारे जीवन की मूलाधार गौ की रक्षा करेंगे। विदेशी भाषा एवं संस्कृत को अपने जीवन व्यवहार से दूर रखेंगे। तभी इन पर्वों का आयोजन हमारे लिए सार्थक होगा।

(आर्यसन्देश, 8-10-89)

उर्दू को उत्तर प्रदेश की द्वितीय राजभाषा बनाना भारतीय एकता और अखंडता के लिए घातक

कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश में सरकारी भाषा संशोधन विधेयक पास करा लिया है। इससे उपथियों ने मारकट की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी है। दोनों पक्षों के लोग अपनी-अपनी बात को सत्य सिद्ध करने के प्रयास में, हर तरह से कहना चाहेंगे और जब बात शांति से कहना सम्भव नहीं होता तो हिंसा के मार्ग का अवलम्बन अपरिहार्य हो जाता है। बदायूं के दंगे यही कहानी कहते हैं। विधानसभा में जो तनाव था, वह भी इसी बात का साक्षी है। उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने से किसी का भी हित सधेगा, यह प्रश्न विचारणीय है। इससे उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में भी हिन्दी की विविधता को बनाए रखने में बाधा आएगी। हम तो अभी तक यही मानते आए थे कि हिन्दी और उर्दू दोनों एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। पर अब भाषा के स्तर पर मुसलमानों को अलग-थलग करने की राजनीति मजबूत होगी। हिन्दी की बात छोड़ भी दें, मुसलमानों के लिए भी इससे पेचीदगियां शुरू होंगी। भाषा के आधार पर पंजाब में जो साम्प्रदायिकता पनपी थी, उसने आज उग्रवाद और आतंकवाद का रूप धारण कर लिया है। क्या यही यहां पर भी नहीं होगा। उत्तर प्रदेश में अब तक हिन्दू और मुसलमानों की भाषा एक ही रही है। उसमें मजहब की कोई भी दीवार नहीं रही। खड़ी बोली के इलाके में दोनों लोग एक ही बोली बोलते हैं। ब्रजभाषा के इलाके में भी यही बात है। वहाँ पर ईसाइयों तक ने ब्रजभाषा में गीत बनाए हैं। अवधी क्षेत्र में सभी अवधी बोलते हैं। यही बात बाँगरू के लिए भी सही है। भाषा के आधार पर उर्दूवाद या हिन्दीवाद को बढ़ावा देना, फिरका परस्ती को बढ़ावा देना होगा। साम्प्रदायिक दंगे होंगे। जनता में असन्तोष बढ़ेगा। शायद मुसलमान भी इससे खुश नहीं होंगे। जनता में असन्तोष बढ़ेगा। शायद मुसलमान भी इससे खुश नहीं होंगे। उनमें भी असन्तोष बढ़ेगा। राम जन्मभूमि का विवाद पहले से ही है उसमें भी यह नया विवाद आग में घी का काम करेगा। भारतीय जनता पार्टी ने इस मामले को खूब उछाला है और इससे नुकसान राष्ट्रीय हितों का होगा, देश भावात्मक एकता का होगा। राष्ट्र की अखण्डता को इससे आघात पहुंचेगा। साम्प्रदायिकता का जवाब दूसरी साम्प्रदायिकता से नहीं दिया जा सकता। इस समस्या का समाधान हिन्दू-मुसलमानों की एकता में है। उनके आपसी सहयोग में है।

उर्दू को राजभाषा बनाने के खिलाफ सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं० श्री नारायण चतुर्वेदी ने उत्तर प्रदेश सरकार का एक लाख का भारत-भारती पुरस्कार ठुकरा दिया है।

इस प्रकार की संवैधानिक समस्याएँ पहले भी उठी थीं। उत्तर प्रदेश के मन्त्री प्रो० वासुदेव सिंह ने इस प्रकार के विधेयक का जबरदस्त विरोध किया था। उस समय के मुख्यमन्त्री ने अपना विधेयक वापस ले लिया था। संविधान की धारा 345 के अनुसार किसी अन्य भाषा को द्वितीय राजभाषा बनाया जा सकता परन्तु उत्तर प्रदेश में वैसी स्थिति नहीं है। वहाँ पर न तो उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाये जाने की मांग है और न ही वहाँ पर 30 प्रतिशत लोग उर्दू भाषी हैं। उर्दू को संरक्षण देना अंग्रेजी को लादे रखने के लिए है। इससे बिलगाव के बीज बोये जायेंगे।

हिन्दी को हम राजभाषा बनाना चाहते हैं। हम महर्षि दयानन्द के वाक्य को बार-बार उद्धृत करते हैं—हिन्दी ही सारे भारत को एकता के सूत्र में बांध सकती है। परन्तु हमारे व्यवहार में हिन्दी का कितना स्थान है। हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और अपने सभी कार्यों में निमन्त्रण पत्रों, नामों, सड़कों, भवनों और बोल-चाल आदि में हिन्दी का प्रयोग करना चाहिये।

(आर्यसन्देश 15-10-89)

जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का लड़की हों, तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

पृथ्वी

पिछले दिनों भारतवर्ष ने 'पृथ्वी' का दूसरी बार सफल परीक्षण किया। इससे यह सिद्ध हो गया कि भारत प्रक्षेपास्त्र विज्ञान के क्षेत्र में विकसित देशों के मुकाबले में खड़े होने की क्षमता रखता है। 'पृथ्वी' नामक प्रक्षेपास्त्र ढाई सौ किलो-मीटर दूर तक मार करने की क्षमता रखता है। इस प्रक्षेपात्र की अपनी विशिष्टताएं हैं। इसे एक बार दागने के बाद नियन्त्रण केन्द्र से कोई निर्देश देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह पूर्णत: स्वचालित है। इसमें अन्दर ही कप्यूटर लगे हैं। इसमें लगे कम्प्यूटर बहुत ही दक्ष हैं। उनकी तुलना अमेरिकी ओर रूसी संयन्त्रों से की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में एक बात और बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस अस्त्र में एक या दो इलैक्ट्रोनिक उपकरणों को छोड़कर बाकी सभी यन्त्र स्वदेशी अनुसन्धान और तकनीक द्वारा बनाये गये हैं। यह अस्त्र 1983 में बने प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम का एक हिस्सा है। है। इसके छ: भाग हैं—त्रिशूल, आकाश, नाग, पृथ्वी, अग्नि और अस्त्र। त्रिशूल अल्प सूचना पर पृथ्वी से हवा में मार करने वाला अस्त्र है। इसका उपयोग तेज रफ्तार वाले विदेशी विमानों पर किया जाता है। आकाश मध्यम दूरी तक हवा में मार कर सकता है। नाग टैंक भेदक अस्त्र है। पृथ्वी का परीक्षण पिछले दिनों किया गया हैं। यह प्रक्षेपास्त्र 250 किलोमीटर की दूरी तक पृथ्वी पर मार करने के काम आता है। अग्नि का परीक्षण अभी कुछ दिनों पहले किया गया था। अग्नि और पृथ्वी के सफल परीक्षण से भारतीय प्रतिरक्षा को नये आयाम मिले हैं। 'अस्त्र' के के विषय में अभी अनुसन्धान किया जा रहा है।

भारतीय प्रक्षेपास्त्र तकनीक से अनेक देश कुपित भी हैं। यह स्वाभाविक भी है। अभी हमें पूर्णतः आत्मनिर्भर होने की जरूरत है। भारत के सामने अनेक समस्याएं हैं।

(आर्य सन्देश 22-10-89)

मदुराई क्षेत्रों में धर्मान्तरण

धर्मान्तरण की समस्या कोई नई नहीं है। मीनाक्षीपुरम और रामनाथपुरम के किस्से सुविख्यात हैं। भारत की जनता और विशेषकर आर्य जनता यह अच्छी तरह जानती है कि यदि समय रहते इस समस्या की ओर ध्यान न दिया जाता तो यह समस्या कितनी दुर्वह हो सकती थी। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री लाला रामगोपाल शाल वाले (वर्तमान स्वामी आनन्द बोध सरस्वती) और तत्कालीन मन्त्री श्री ओमप्रकाश त्यागी ने बड़ी तत्परता से इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास किया था। वे तुरन्त वहाँ पर गए भी, ताकि परिस्थितियों का सही विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जा सके। उन्होंने समस्याओं का विश्लेषण किया और समाधान भी किया मीनाक्षीपुरम का सारा गाँव पुनः वैदिक धर्म में दीक्षित हो चुका है। वहाँ पर आर्यसमाज मन्दिर है और वैदिक पाठशाला चल रही है जिसका सम्पूर्ण व्ययभार सार्वदेशिक सभा, अन्य दानी महानुभावों के सहयोग से, वहन कर रही हैं। इस सम्पूर्ण क्रिया कलाप में पं० रामचन्द्रराव वन्देमातरम् का योगदान अप्रतिम है।

अब एक नई समस्या उठ खड़ी हुई है। हिन्दुस्तान टाइम्स के 21 सितम्बर 1989 के दिल्ली संस्करण में मदुराई के श्री सी०एस० जयराम के प्रेषण के आधार पर समाचार प्रकाशित हुआ है। जिसका मूल स्वर यही है कि अब मदुराई में एक वर्ग विशेष के लोगों ने धमकी दी है कि यदि उनकी कठिनाइयों का समय रहते समाधान न किया गया और उन्हें इसी प्रकार सताया जाता रहा तो वे धर्मान्तरण कर लेंगे। इस प्रकार की धमकियाँ देश के अनेक कोनों से समय-समय पर उठती रहती हैं। पिछले दिनों उत्तर प्रदेश में कुछ लोग अपना धर्म परिवर्तन करना चाहते थे आर्यसमाज के लोगों ने वहाँ पर जाकर सराहनीय कार्य किया था। जब मदुराई में भी ऐसा ही अभियान छेड़ना पड़ेगा। आर्यसमाज सामाजिक व्यवस्था का सजग प्रहरी हैं मदुराई में आर्यसमाज है। वहाँ के कार्यकर्ता सप्राण हैं। पं० रामचन्द्रराव बन्दे-मातरम् का कार्यक्षेत्र वही है। यद्यपि उनके जिम्मे काम बहुत हैं, परन्तु हमें विश्वास है कि उन जैसे जीवट का व्यक्ति कभी हारेगा नहीं, कभी थकेगा नहीं।

मदुराई क्षेत्रों के इन लोगों को, युवकों और युवतियों को, जो बहुत ही आवेश में थे तथा बार-बार धर्मान्तरण की धमकी दे रहे थे, पिछले दिनों राज्यस्तर के तथा केन्द्र के नेताओं ने सम्बोधित किया और उनसे आग्रह किया कि वे शान्त रहें, उनकी समस्याओं का समाधान खोजा जाएगा, परन्तु थे शान्त नहीं हुए। केन्द्रीय मन्त्री श्री पी० चिदम्बरम ने भी उन्हें सम्बोधित किया। ये लगभग 1500 परिवार हैं।

थिरुमंगलम् [illegible] और अन्य जगहों पर इन्होंने प्रदर्शन भी किया । यातायात ठप्प हो गया और दुकानें भी बन्द हो गयीं । वहाँ पर साम्प्रदायिक दंगे हुए थे जिनमें 27 व्यक्ति मारे गए कम से कम दो करोड़ की सम्पत्ति का नुकसान हुआ ।

हमारा उद्देश्य इस घटना का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करना नहीं है । हमारा उद्देश्य यही है कि इस प्रकार की समस्याओं का समय रहते समाधान किया जाए । इन समस्याओं का निदान हम सभी को मिलकर करना होगा । जब भी धर्मान्तरण की समस्या आती है, यही कहा जाता हैं कि वर्ग विशेष लोग गरीब लोगों को सताते हैं । हम आपसी सद्भाव क्यों नहीं बढ़ाते । हमारा कर्त्तव्य है कि लम्बे समय से जो लोग दलित हैं, पीड़ित हैं, हम उन्हें अपना मानें । उन्हें संरक्षण दें । उन्हें विश्वास दिलाएं कि धर्म परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है । उन्हें वहीं सब यह मिलेगा, जो उनका प्राप्य है ।

(आर्य सन्देश 22-10-89)

महापुरुषों में अग्रणी

"जिस क्षण देह में दुर्बलता प्रतीत हो, उसी क्षण एक महान् विशालकाय गुजराती का स्मरण करो । जिस क्षण तुम्हारे मन में शिथिलता या कायरता का प्रवेश हो, उसी क्षण जीवन और उत्साह से ओत-प्रोत उस तेजस्वी देशभक्त का स्मरण करो । जिस क्षण तुम्हारे हृदय में मोह और विलास का साम्राज्य प्रवर्तित हो, उसी क्षण धन को ठोकर मारने वाले उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी की ओर दृष्टि करो । अपमान से आहत होकर जिस क्षण तुम नजर ऊंची न उठा सको, उसी क्षण हिमालय के समान अडिग और उन्नत व्यक्ति के ओजस्वी मुख को अपनी कल्पना में उपस्थित करो । मृत्यु का वरण करते हुए डर लगे, तो उस निर्भयता की मूर्ति का ध्यान करो । द्वेष-भाव से खिन्न होकर जब तुम्हें अपने विरोधी को क्षमा करने में हिचकिचाहट हो, तो उसी क्षण विष पिलाने वाले को आशीर्वाद देते हुए एक रागद्वेष-मुक्त संन्यासी को याद करो ।

यह गुजराती व्यक्ति स्वामी दयानन्द हैं । यह गौरवशाली पुरुष भारतीय महापुरुषों में अग्रस्थान पर विराजमान हैं ।"

—रमणलाल बसन्तलाल देसाई
(गुजराती के राष्ट्रकवि)

आर्यसमाज का द्वार सब के लिए

मनुष्य एक जाति है और उसका स्वाभाविक विभाजन, गुण, कर्म स्वभाव के आधार पर एक ही हो सकता है, वह है आर्य और अनार्य। आर्य की परिभाषा देव दयानन्द के शब्दों में परोपकार की वृति वाले मनुष्य से हैं और अनार्य की परिभाषा स्वार्थ वृति वाले मनुष्य से है। किसी को कितना और कैसे लाभ पहुंचाया जाय, यह सहज आकांक्षा ही आर्यत्व को प्रदर्शित करने वाली है और इसके विपरीत किसी से कितना लाभ उठाऊं यही अनार्यत्व को बतलाता है।

सभी मनुष्यों की आचरण संहिता एक जाति का होने के नाते एक ही होनी चाहिये। यह कहना सर्वथा अविवेकपूर्ण है कि पहुंचना एक ही स्थान पर है किन्तु रास्ते अलग-अलग हैं। ऐसा नहीं अपितु पहुँचना सबको एक ही स्थान पर है और उसका रास्ता भी एक ही है। ईश्वर प्रदत्त रास्ता ही एक मात्र रास्ता है अन्य छलावे और भटकावे हैं, रास्ते नहीं। स्वामी दयानन्द ने इसी ईश्वर प्रदत्त मार्ग अर्थात् वैदिक आचरण संहिता के प्रचार प्रसार पर पूरा जोर दिया जिससे कि मनुष्य समाज में तथा अन्य मार्गों से फैलते हुए वाद विवाद और विद्वेष का अन्त हो जाये।

महर्षि दयानन्द ने कहा था कि आर्यसमाज का दरवाजा सबके लिए खोल दो। उनके सपनों का समाज वह होगा जिसका प्रधान पौराणिक व्यक्ति हो, मन्त्री कोई मुस्लिम हो, कोषाध्यक्ष कोई ईसाई हो, पुस्तकाध्यक्ष कोई जैन हो और आय-व्यय निरीक्षक कोई सिख हो अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष का एक स्थल पर उपकार के लिए एकत्रित और संघटित होना ही सच्चा आर्यसमाज है।

बुराई अपने आप में बुरे लोगों को एकत्रित करने का गुण रखती है। इसके विपरीत भले मनुष्यों को एकत्रित करना पड़ता है। संसार का कल्याण भले मनुष्यों के एकत्रित होने से होता है। महर्षि दयानन्द का यह सार्वभौम चिन्तन उसे संसार के अन्य महापुरुषों से सर्वथा पृथक खड़ा कर देता है। आर्यसमाज की उसके द्वारा स्थापना उसके इसी चिन्तन का परिणाम है। पिछले पांच हजार वर्षों का एक मात्र प्रयोग है।

आचार्य को हमारी श्रद्धाञ्जलि सच्चे अर्थों में उस दिन सफल समझी जायेगी जिस दिन संसार के सभी मतों के यहां उपस्थित प्रतिनिधि महोदय मनुष्य जाति के कल्याण निमित्त परोपकार की भावना से प्रेरित होकर इस निर्वाणकक्ष से यह कहते हुए बाहर निकलेंगे कि मनुष्य मात्र की आचरण-संहिता एक है और वह ईश्वर प्रदत्त ही है इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

आर्यसमाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में आर्यसमाज की स्थापना की थी जो आस्तिक समाज है। दयानन्द वेदों को निभ्रन्ति ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। आर्यसमाज का वैधानिक मन्तव्य है कि ईश्वर सब सत्य विधाओं का आदि का मूल है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और नित्य है। एक मात्र उसी की उपासना करनी चाहिए। वेद सब विधाओं का ग्रंथ है।

आर्यजन विधवा विवाह के पक्ष में है। बाल विवाह जात-पाँत, मांश भक्षण के विरोधी हैं। हवन यज्ञ आदि संस्कारों को करते हैं। गुरुडम को नहीं मानते।

आर्यसमाज वेदों की ओर चलो—आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करता है। जिसके संस्थापक वेदों से निकलकर ऐसी बातें प्रकाश में लाए हैं जिन्हें आधुनिक जगत् में मान्यता प्राप्त हैं। उन्होंने वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद को सिद्ध कर दिया और विविध वैदिक देवताओं को सच्चे परमात्मा के विशेषण बताकर, बहु देवतावार की मान्यता की निस्सारता प्रतिपादित कर दी है। आर्यसमाज कर्मफल और युक्ति में विश्वास करता है। आवागमन के चक्र से छूट जाना मुक्ति है।

दयानन्द उच्चकोटि के राष्ट्रवादी थे। उनका आर्यसमाज आन्दोलन भारत में आधुनिक राष्ट्रीयता का कारण और कार्य रहा है।

आर्यसमाज के प्रति लोगों के आकर्षण के निम्नलिखित कारण हैं :

वेद की पुनः प्रतिष्ठा, एक परमात्मा की पूजा, वेदों की अपौरूषेयता, जन्मना जात-पाँत का खण्डन दलितोद्धार, समाजसेवा, अपने पुरुषार्थ से प्रत्येक व्यक्ति के अधिक से अधिक ऊँचा उठाने की मान्यता, भारत-भारतीयों का है, सर्वप्रथम यह आवाज उठाना, देश प्रेम, विश्व प्रेम के भावों को भरना।

—एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन, पृष्ठ 179